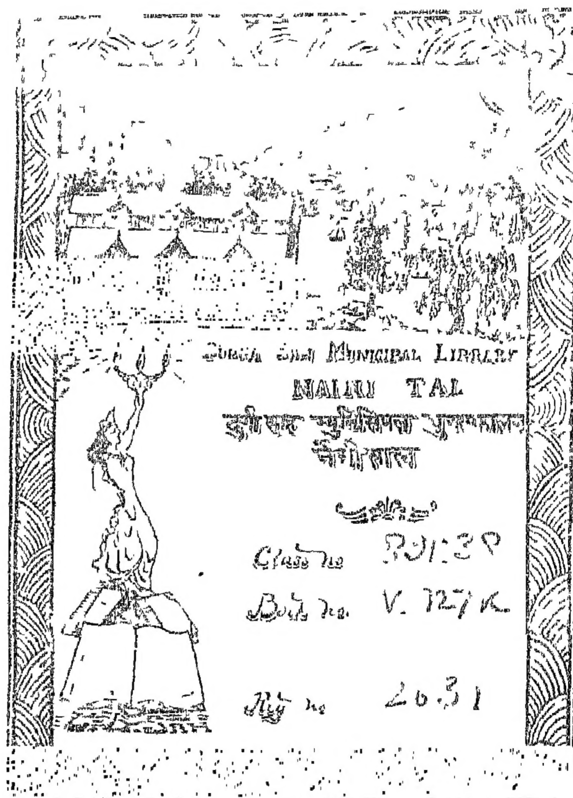

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.3?
Book No. V. 127 K.
Regn No. 2031

क्रान्ति चिरजीवी हो !

उन नवयुवकों के कर कमलों में समर्पित
जिन्होंने अपना यौवन देश की आज़ादी के लिये
न्यौछावर कर दिया।

प्रथम संस्करण

मूल्य २) रुपया

१९४६

क्रान्ति चिरजीवी हो!

(कहानी संग्रह)

भूमिका लेखक—

देशरत्न, राजा महेन्द्र प्रताप जी

लेखक—

विश्वम्भर सहाय प्रेमी

मुद्रक प्रकाशक—

अध्यक्ष, प्रेमी प्रिंटिङ्ग प्रेस मेरठ।

विषय सूची

		पृष्ठ
१	क्रान्ति चिरजीवी हो	१
२	रिवाल्वर	६
३	सदाव्रत	१३
४	पागल नेमी	२२
५	दीवान जी	२६
६	खड़ी हथकड़ी	३६
७	दस पैसे	४१
८	फांसीघर	४८
९	स्वातन्त्र यज्ञ में आहुति	५८
१०	दुखिया की दिवाली	६३
११	सौराष्ट्र की नर्तकी	७३
१२	संत मोची	८१
१३	तन्हाई	९१
१४	भिखारिन रजनी	१०३
१५	अपराधी	११९
१६	मिलाई	१२९
१७	मज़दूर	१३८
१८	गोलीकांड	१४८
१९	आज़ादी पथ	१५६
२०	विद्रोह की आग	१६७



विश्वम्भरसहाय प्रेमी

कुछ शब्द

१९४२-४३ में मेरठ जेल में एक बन्दी के रूप में मुझे कुछ कहानियां लिखने का अवसर प्राप्त हुआ था। जेल नियमों के अनुसार न तो काग़ज़ मिलता था, न दवात और कलम। फिर भी जेल वालों की दृष्टि से बचते हुए उन किताबों के पन्नों की कोरी जगह पर कुछ कहानियां संक्षिप्त रूप से लिखीं जो जेल में मैंने अपने पढ़ने के लिये मंगा ली थीं। इस कहानी संग्रह में कुछ ऐसी भी कहानियां दी गई हैं जो जेल जाने से पूर्व कई समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं और कुछ जेल से वापिस आने पर भी लिखी गई हैं।

इन कहानियों के लिखने का मेरा मुख्य अभिप्राय अपने देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करना है। इन कहानियों में कल्पना से बहुत कम काम लिया गया है अधिकांश भाग वास्तविकता पर निर्भर है। सम्भव है पाठकों को इनमें सरसता का अभाव प्रतीत हो परन्तु उन्हें जेल जीवन का एक आभास अवश्य मिलेगा जिसमें रहकर बन्दी अपना समय व्यतीत करता है।

पुस्तक के नाम के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखने आवश्यक हैं। मैं मानता हूँ कि 'क्रान्ति' चिरजीवी नहीं होती। क्रान्ति तो एक समय के साथ सम्बन्ध रखती है। एक उमड़ता जोश होता है और उसके पीछे बलिदान। उस बलिदान के सहारे क्रान्ति उसी के अनुकूल रूप धारण करती है और उससे देश और जातियां अपनी करवट बदलती हैं। पादाक्रान्त देश उभरते हैं और फिर आज़ादी का आनन्द लाभ करते हैं। यह समझते हुए भी मुझे 'क्रान्ति चिरजीवी हो!' कहानी पसन्द थी। इसमें एक नवयुवक के हृदय की भावना झलक रही थी। अतः मैंने यही नाम अपने इस कहानी संग्रह का रखना उपयुक्त समझा।

मुझे आशा है देश के नवयुवक, नवयुवतियां इस प्रकार की कहानियों को कम से कम एक बार पढ़ने का कष्ट करेंगे क्योंकि उन्हीं के कन्धों पर हमारी राष्ट्रीयता का, हमारी आज़ादी का भार है।

अन्त में श्री राजा महेन्द्र प्रताप जी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने इस कहानी संग्रह की भूमिका लिखने की कृपा की।

मेरठ
२ अक्तूबर १९४६

विश्वम्भर सहाय प्रेमी

भूमिका

मुझे श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी द्वारा लिखित कहानी संग्रह जिसका नाम 'क्रान्ति चिरजीवी हो' है देखने को मिला। इस संग्रह में राजनैतिक समस्याओं पर विचार किया गया है। बहुत सी कहानियां जेल से सम्बन्ध रखने वाली हैं जिनमें कैदियों के कष्टों और उनके दृढ़ विचारों का प्रतिपादन किया गया है। मज़दूर नाम की कहानी में मज़दूरों की आर्थिक समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

स्थान स्थान पर भ्रमण करने के कारण मुझे इतना अवकाश नहीं मिला कि मैं इस कहानी संग्रह पर विस्तृत रूप से अपने विचार व्यक्त कर सकूं। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रेमी जी ने इस प्रकार की राजनैतिक विचार धारा को ऐसी कहानियों के रूप में रखा जिनको पढ़कर राष्ट्रीय जागृति की भावना उत्पन्न हो।

कहानियों के द्वारा प्रायः सभी देशों में लेखक अपने देश और समाज को उठाने वाले विचार प्रगट करते हैं और उनसे सर्व साधारण को बहुत लाभ पहुँचता है। मुझे स्वयं भी कहानियां लिखने का शौक रहा है और मैंने बहुत से विषयों पर कहानियां लिखी भी हैं। मुझे आशा है कि प्रेमी जी द्वारा लिखित इस कहानी संग्रह का समुचित आदर होगा और जनता को लेखक के विचारों से लाभ पहुँचेगा। मैं प्रेमी जी को उनके इस कहानी संग्रह के लिये बधाई देता हूं।

मेरठ
१६ सितम्बर १९४६

महेन्द्र प्रताप



श्री राजा महेन्द्रप्रताप



हट्टा-कट्टा नवयुवक जेल की बैरक में बन्द था। गौर वर्ण, गठीला शरीर, लम्बे-लम्बे काले बाल। ये सब उसकी शारीरिक सम्पत्ति थे। विचार उग्र थे। वह अपने आप को क्रान्तिकारी समझता था। अपने देश की स्वतन्त्रता की अग्नि में पड़कर वह कुन्दन बनने का यत्न कर रहा था। जेल की चार दीवारी में भी उसके स्वतन्त्र विचार क्रियाशील हो उठे। उसे स्मरण न रहा कि वह १॥ वर्ष के कठोर कारावास का समय व्यतीत करने वाला एक बन्दी है। मस्तिष्क में विचार उठे। भावनायें जाग्रत हो उठी। अगीठी का जला कोयला उठाकर उसने बैरक की लम्बी दीवार पर लिख दिया—"Long live Revolution", "क्रांति चिरजीवी हो।"

युवक मुस्कराया। उसने उपरोक्त पंक्तियों को अपनी आराध्य देवी मान लिया। दोनों हाथ मस्तक पर लगाये। श्रद्धा से दीवार की काली पंक्तियों को नमस्कार किया। छोटी सी कोठरी में मातृभूमि की वंदना की और एक मन्द मुस्कान के साथ काला कम्बल बिछा उस पर खादी की फटी धोती डाल बैठ गया।

× × ×

उस दिन कड़ाके की गर्मी थी। पत्ता भी न हिल रहा था। पसीने से कपड़े ऐसे तर हो रहे थे मानो हल्की वर्षा ने उन्हें भिगो दिया है। यह बात न थी कि दोपहरी का समय हो गया हो। प्रातःकाल के ८ ही बजे थे। हां, यह बात ज़रूर थी कि जिस जेल का हम वर्णन कर रहे हैं वह गर्म-स्थल की एक गर्म जेल मानी जाती है।

सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल, जेलर, दोनों ही साथ साथ युवक की बेरक की ओर आये। ऐसे समय चारों ओर से कर्मचारीगण सचेत होकर सलामी देते हैं। सभी चौकन्ने रहते हैं। बेरक के सामने क्या मजाल कि कोई शोर गुल हो। जेलर भी अपना गौरव और प्रभुत्व इसी में समझता है कि सुपरिन्टेन्डेंट जेल की 'विज़िट' बिना किसी विशेष टीका-टिप्पणी के पूर्ण हो जाय। कैदियों को पूर्ण नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न किया जाता है। यह सब जेल लोक का व्यवहार है और वह पूर्ण कर ही दिया जाता है। इसमें चाहे किसी बन्दी को अपने हृदयगत विचारों को बन्द ही क्यों न रखना पड़े। जेलर की शान इसी में है कि बन्दीगण कोई भी शिकायत न कर पायें। फिर भी शिकायतें होती हैं और सुनी जाती हैं।

यह सब कुछ हो रहा था कि इतने में सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल उस बैरक के पास ठिठका जहां युवक ने "क्रांति चिरजीवी हो" लिखा था। पढ़ा, एक बार नहीं दो बार पढ़ा। वह आगे बढ़ा, पर तब ही मुड़कर चुपके से नहीं, बल्कि कर्कश स्वर में, उसने पूछा—"दीवार पर किसने लिखा है ?"

"मैंने" युवक ने मुस्कराहट के साथ निर्भीक स्वर में उत्तर दिया।

"ये क्या लिखा है ?"

"आपने स्वयं पढ़ लिया है। अच्छा मैं भी आपको सुनाये देता हूँ।" दोनों भाषाओं में लिखी गई पंक्तियों को सुनाकर युवक ने अपने को धन्य माना।

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने पूछा—"क्या तुम क्रांतिकारी हो ?"

"इस जेल में सभी राजनैतिक बन्दी क्रांतिकारी हैं।"

"मैं आपसे पूछता हूँ, आप अपनी कहिये।"

"मैं क्रांतिकारी हूँ।"

"जेल में क्रांति से क्या मतलब ?"

"मेरे जीवन का उद्देश्य प्रत्येक स्थान में क्रांति करने का है।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट झुंझला गया। स्वतन्त्र विचारों को सुनकर गुलाम देश का आफीसर आपे से बाहर हो गया। उसके पास युवक के विचारों का मूल्य आंकने की शक्ति न थी। शक्ति थी केवल अपने अधिकारों का प्रयोग करने की। उसने आज्ञा दी "सैल"—क़ैद तन्हाई।

× × ×

जेल का संसार भी विचित्र संसार है। जेल में हुई घटना का भेद सहज ही खुल जाता है। राजनैतिक बन्दियों में से यदि किसी व्यक्ति पर कोई चोट पड़ती है तो सभी व्यक्ति इसे अपने ऊपर आई विपत्ति समझते हैं। युवक 'तन्हाई की कोठरी' में था। उसे पता भी न था कि उसकी कोठरी से बाहर क्या हो रहा है। जेल की दीवारों पर तारकोल से लिखा गया "क्रांति चिरजीवी हो।"

प्रबन्धकों ने इन शब्दों को मिटा दिया। दीवार खुरच दी गई। उन पर सफेदी पोत दी गई। परन्तु इस सफेदी के भीतर से भी हल्की झलक क्रांति की दीख पड़ रही थी।

दूसरा दिन हुआ । कोठरियो की दीवारों, बैरकों के अन्दर और फर्श पर कोयले, तारकोल, चाक और अन्य वस्तुओं द्वारा अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी में वही शब्द लिखे हुए थे । इन सब को मिटा देना सरल काम न था । क्रांति की भावना ही दीवारों, वृक्षों और बैरको से प्रगट हो रही थी ।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट परेशान था । जिस आग को उसने छेड़ दिया था, उसे बुझाना नहीं जानता था । निराश हो, हस्तक्षेप से हाथ खींच, उसने इसमें ही बेहतरी समझी कि सारा भार जेलर पर छोड़ दिया जावे।

जेलर महोदय समझदार व्यक्ति थे । उनके भी एक मनचला युवक पुत्र था। वह भी युवक हृदय को परखते थे । समय को देखते हुए उन्होंने चतुराई से काम लिया । युवकों के बैरक के सामने जा एक योग्य, अनुभवी व्यक्ति के रूप में कहा—"तुम लोग सफल हुए, परन्तु अब मुझे भी इस पद पर सफलता से काम करने दो । तुमने लिखा, मन खोल कर लिखा । तुम इसे और भी लिख सकते हो, परन्तु जेल नियमो का उलघन कब तक करोगे ?"

अनुभव और चतुराई से कही गई बात कुछ युवकों पर प्रभाव कर गई ।

एक युवक ने अन्दर से पुकार कर कहा—' जेलर महोदय अब आप क्या चाहते हैं ?"

"जेल के अन्दर "क्रान्ति चिरजीवी' लिखी गई पंक्तियां तुरन्त मिटा दी जायं ।"

"इसके बदले में क्या मिलेगा ? काल कोठरी ?"

"नहीं !"

"तो क्या ?"

"शान्ति ।"

"अच्छा यदि आप शान्तिप्रियता के पक्षपाती हैं, तब क्या कालकोठरी में पड़े हुए युवक को फिर अपने पहिले स्थान पर लौटा देंगे ?"

"अवश्य ।"

पंक्तियां मिट रहीं थीं । पशुता जहां विजय न प्राप्त कर सकी थी, वहां थोड़ी सी मानवता अपना प्रभाव डालने में समर्थ हुई ।



(अ)

जून का महीना था। गर्मियों के दिन थे। वर्षा अभी नहीं हो पाई थी। सब लोग बैरकों में सोते थे। नज़रबन्दों को मेरठ जेल में दो बैरकों में रखा गया था। हम लोग आठ नम्बर की बैरक में थे। मुझसे पहिले ही से जो साथी जेल में थे उन्होंने बताया कि १४ नम्बर में वे व्यक्ति रखे गये हैं जिनको जेल वाले साधारण नज़रबन्दों से कुछ ऊपर का समझते हैं, या जो ज़िले के 'लीडर लोग' होने का दम भरते थे। और ८ नम्बर की बैरक में साधारण राजबन्दी थे। वैसे मैंने कोई विशेष अन्तर नहीं पाया। जहां १४ नम्बर की बैरक में मेरठ ज़िले के एम०एल०ए० तथा ज़िले के अन्य नेता राजनीति पर चर्चा करते थे वहां आठ नम्बर की बैरक में भी एक से एक तंत्र बुद्धि वाला नज़रबन्द विद्यमान था।

उन दिनों हमारी आठ नम्बर बैरक को 'लेडीज़ बैरक' भी कहा जाता था। इसका कारण यह था कि बैरक के लोहे के सींखचों वाले प्रवेश द्वार पर तख्ते जड़वा दिये गये थे। सूराखों में कपड़ा ठूंस कर तारकोल फिरवा दिया गया था, जिससे अन्दर के नज़रबन्द बाहर के

किसी क़ैदी को न देख पायें। हमारे शरारती साथी फिर भी किसी न क्सी वस्तु से उन तख्तों में सूराख कर ही लेते थे।

आठ नम्बर की बैरक में कुछ कम्यूनिस्ट कहे जाने वाले थे और कोई कोई सुभाष बाबू के फ़ारवर्ड ब्लाक में भी रह चुका था। कुछ व्यक्ति विशुद्ध गांधीवादी थे और कुछ उग्रवादी। कुछ साधारण हल बैल चलाकर खेती बाड़ी का काम करने वाले थे तो कुछ गांधी आश्रम के संचालकों और कार्यकर्ताओं में से थे। कुछ मुंशी थे तो कुछ मास्टर। सारांश, सभी वर्ग के व्यक्ति इस बैरक में भी राजनीति की बाल की खाल निकालते थे। इन सब में यदि किसी बात में समानता थी तो वह इसी में कि प्रत्येक इस धुन में रहता था कि किसी भी जेल अधिकारी से दब कर न रहा जाय। जेल वाले भी इस बात को समझते थे। जहां वह १४ नम्बर वाली बैरक के कुछ व्यक्तियों का प्रभुत्व मानते थे, वहां यह भी जानते थे कि आठ नम्बर की बैरक वाले सम्मिलित मोर्चा लेने वाले हैं।

रातों रात ज़रा ज़रा सी बात सारी जेल में गूंज जाती थी। तनिक सी घटना भी होती थी तो उसका सभी नज़रबन्दों और राजनैतिक क़ैदियों को पता चल जाता था। इधर इस प्रकार का जीवन-सग्राम चल रहा था, उधर जेलर अपना दबदबा गांठने का प्रयत्न करता रहता था।

(ब)

बाहरों में सभी विचारों के व्यक्ति रहते हैं। वर्षों जेल का जीवन व्यतीत करने के कारण वे भी खूब मंज जाते हैं। फिर उस बूढ़े

वार्डर ने तो न जाने १९२३ से अब तक कितने उतार चढ़ाव देखे थे। कहता था, "बाबू साहब! २० वर्ष इसी जेल में हो गये। सिर्फ एक दो मरतबा तबादला हुआ। फ़तहगढ़ जेल मे तो सिर्फ २१ दिन रहा था और बरेली सेण्ट्रल में सिर्फ दो हफ्ते। फिर इसी जेल में आ गया। मैंने मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद की इसी जेल में ख़िदमत बजाई है। लेकिन अब ज़माना और है। ज़रा ज़रा सी बात के पर लग जाते हैं।"

उसकी बात में काफ़ी रहस्य होता था। वह बात भी कह देता था और स्पष्ट भी न होने देता था। परन्तु हमारे साथियों में कई व्यक्ति वार्तालाप करने में ऐसे निपुण थे कि उस बूढ़े को भी चक्कर में डालकर सब कुछ पूछ लेते थे।

रात को ११॥ बजे वह वार्डर हमारी बैरक में चाबी लगाने आया। रात्रि को भी बहुत से साथी देर तक जागते थे। तमाखू की ताक में रहने वालों को तो रात्रि में ही विशेष सुविधा मिलती थी। हुक्के का दौर रात को १२ बजे तक चलता था। कभी कभी तो और भी देर हो जाती थी। गांव की रागनी गाने में हमारे दो एक साथी विशेष निपुण थे। उनका गाना सुनने वाले दो चार और रसिक भी उनके साथ जागते रहते थे।

वार्डर को दो चार मिनट को रोक लेना इन लोगों के लिये साधारण बात थी। वार्डर से वार्तालाप होने लगा। कौन कौन से आन्दोलनों में कौन जेलर इस जेल में आया, उसका स्वभाव कैसा था, इन्हीं विषयों पर वह बड़ी देर तक और बड़ी भावुकता के साथ बातें करता रहा। चलते चलते उसने कहा—"आप लोग सब बातों से चौकस रहना। कल तलाशी ली जायगी।"

(स)

सदैव के समान प्रातः ७॥ बजे झगड़े की प्रार्थना हुई। उसके पश्चात् प्रतिदिन के समान खेल कूद, कसरत और अन्य कार्यों में राजबन्दी व्यस्त हो गये। बैरक के लिये राशन लेने वाले प्रतिनिधि राशन लेने चले गये। उनके लौटने पर पता चला कि जेल अधिकारी किसी विशेष चिन्ता में व्यस्त हैं। १४ नम्बर की बैरक खाली कराई जा रही है और उनका सारा सामान गोदाम की ओर जा रहा है। सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल, जेलर तथा अन्य अधिकारी सभी बड़े सतर्क हैं।

किसी ने अनुमान लगाया कि उस बैरक के लीडरों को प्रान्त की किसी दूसरी जेल में भेजा जायगा। कुछ ने कहा, "सिर्फ टैरोरिस्ट (आतंकवादी) ही भेजे जायंगे।" किसी ने कहा "छांट छांट कर कुछ को बाहर भेज देंगे और बाकी हमारी बैरक में आ जायंगे।"

कई घण्टे खूब चर्चा चलती रही। रात्रि से सभी सतर्क थे। नियम विरुद्ध सामान को सभी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार ठिकाने लगा चुके थे। था ही क्या? किसी पर चाकू था तो किसी पर दवात कलम। किसी पर चिलम थी तो किसी पर देसी गुड़गुड़ी। किसी पर बिना मुहर लगीं किताब तो किसी पर दो चार नोट बुक। अपनी बुद्धि के अनुसार सभी ने अपनी ऐसी वस्तुओं को जेल वालों की आंखों से ओझल कर दिया।

ठीक १ बजे हमारी बैरक में भी समाचार आया कि सब लोग अपना अपना सामान बैरक से बाहर निकाल लें। बात की बात में दो पक्के (क़ैदी वार्डर) २० नम्बरदार और १० हट्टे कट्टे वार्डर जेल अधिकारियों के साथ बैरक में आ धमके। नीम के वृक्ष के नीचे

एक एक व्यक्ति के सामान का निरीक्षण होने लगा। जेल अधिकारियों ने सतर्कता से प्रत्येक वस्तु को देखा भाला। तकियों का गिलाफ खोलकर अन्दर का सामान देखना तो साधारण बात थी। कुछ न कुछ सामान जेल वालों के हाथ लग ही गया। पांच सात बिना सेंसर की हुई पुस्तकें मेरी भी जेल वाले ले गये। साथ ही एक एक रुपये के दो नोट जो मेरी 'नीरजा' पुस्तक की जिल्द में छिपे हुये थे, जेलर ने चतुरता से ताड़कर निकाल लिये।

शाम के ५ बजे यह तमाशा समाप्त हुआ। हमें बैरक नं० ५ में बन्द किया गया और १४ नम्बर बैरक वालों को हमारी बैरक में बन्द किया गया। इस प्रकार कोई भी बैरक ऐसी न रही जिसके साधारण अखलाकी क़ैदी से लेकर राजनैतिक क़ैदियों तक का परिवर्तन न किया गया हो।

(द)

जेल वालों ने लगातार तीन दिन तक कई बैरकों की दीवारों के पुश्ते खुदवा डाले परन्तु उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ।

द अगस्त निकट आ रही थी। साथियों में अपूर्व उत्साह था। सभी १६४२ के उस भाग्यपूर्ण दिवस की स्मृति दोहरा रहे थे। रात्रि को प्रत्येक बैरक का समाचार ज्ञात हो ही जाता था। राशन लेने जाने वाले गोदाम जाने से रोक दिये गये थे। साधारण अखलाकी क़ैदी ही हमारा सब सामान लाकर देते थे।

जेल अधिकारियों ने एक सप्ताह से प्रत्येक बैरक पर दो दो वार्डर एक समय के लिये नियुक्त कर दिये थे। बीमारों के लिये अस्पताल

आने की भी आज्ञा न थी। जेल डाक्टर या कम्पाउण्डर अपना सामान लेकर बैरक में ही आकर दवा पिला जाते। हमारे साथी दवाई के सामान को खोमचा कहते थे। एक दो व्यक्ति तो उसे देखते ही पुकार उठते—"चलो भई! खोमचा आ गया।"

जेल का छोटे से छोटा अधिकारी भी यह भेद न देता था कि ऐसा परिवर्तन क्यों किया गया है। परन्तु साथी लोग इस उधेड़ बुन में लगे ही रहते थे कि वास्तविक बात का पता लगावें। वार्डर लोगों में से कोई भेद न देता था। मक्खन, डबल रोटी खाकर भी कोई वार्डर इस सम्बन्ध में कुछ न बताता था। इससे पहले तो सीज़र की एक सिगरेट पर कुछ का कुछ राग अलाप जाते थे और बड़े से बड़ा काम निकाल देते थे। इस बार शायद उनको भी पता नहीं था।

७ अगस्त को सायंकाल पता चला कि जेल अधिकारी रिवाल्वर की तलाश में हैं। सायंकाल बैरक बंद कराने के लिये पहले एक दो वार्डर या जेल क्लर्क ही काम दे देते थे, परन्तु अब कई दिन से जेलर और अन्य जेल कर्मचारी आ रहे थे।

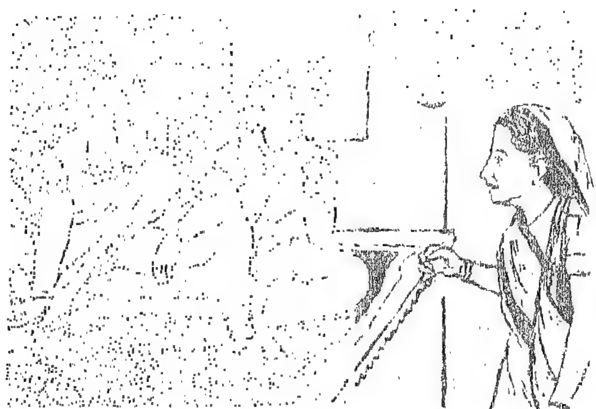
बैरक बन्द होते समय अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। कोई कहता, 'रिवाल्वर मेरी पतलून की जेब में है।" दूसरा कहता, "मेरे कोट की आस्तीन में है।" जेलर, जिसका एकमात्र उद्देश्य जेल पर अपना दबदबा कायम करना था, आज उसकी दशा देखते बनती थी। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, सारे बदन से पसीना छूट रहा था।

जेल अधिकारियों का पराभव करके जेल में इस प्रकार का मनोविनोद मिल जाना सरल काम न था। रात्रि भर जेल में कड़ा

पहरा रहा। यह सब तमाशा उस व्यक्ति ने खड़ा कराया था जिसने सूचना दी थी कि "जेल में रिवाल्वर आया है।"

× × ×

८ अगस्त को प्रातः वेला में बैरकें भारत माता की जय घोष से गूंज उठीं। अहिंसा के पुजारियों ने राष्ट्रीय झण्डे की वन्दना की और फिर 'करो या मरो' 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के निश्चय को दुहराया। यही वह रिवाल्वर था जिसको अहिंसक राजबन्दी प्रयोग करना चाहते थे। जड़ रिवाल्वर, जिसकी अधिकारी तलाश में थे, वहां कहां था !



नीमो की माँ ने अपनी आयु के सुनहरी दिवस घर के काम काज में ही व्यतीत कर दिये थे। उसकी सादगी और उसका भोलापन उसके जीवन की एक विशेषता थी। वर्तमान युग की कोई भी बात उसके जीवन में प्रविष्ठ नहीं होने पाई थी। वही साधारण ग्राम महिलाओं के समान पहनाव और वही स्नेह भरा मधु भाषण। गृह कार्य में लीन रहते हुए भी उसे इस बात का विशेष ध्यान रहता था कि किसी भी शुभ कार्य में उसके द्वारा कोई न कोई सहायता जगत के संतप्त प्राणियों को पहुंच जाय। मन रहते हुए भी वह दान पुण्य में कुछ भी व्यय न कर पाती थी, इसका कारण घर की साधारण स्थिति और अपने परिवार का अधिक व्यय होना था।

उसके पड़ोस में एक बुढ़िया रहती थी। वैसे उसका नाम सुखदेई था, परन्तु उसे सब नीमो की दादी कहकर पुकारते थे। उसका बड़ा सीधा स्वभाव था, पास पड़ोस की कोई स्त्री भी उससे अप्रसन्न नहीं रहती थी। उसके घर पर प्रतिमास भिखमंगों की भीड़ लगी रहती थी। उसने यह नियम बना लिया था कि मास में एक बार सदाव्रत के रूप में दीन दुखी और अपाहिजों को अन्नदान दिया जाय।

उसने यह कार्य अपने ही हाथों में लिया हुवा था। एक हिन्दू नारी के पवित्र आदर्श का पालन करना वह इस कार्य में अन्तर्निहित समझती थी। उसकी धारणा थी कि इस शुभ कार्य को घर के नौकरों पर छोड़ना उचित नहीं। सबसे बड़ी विशेषता उसके इस कार्य में यह थी कि संतप्त प्राणियों को अपने द्वार पर आया देखकर वह बन्धु बान्धव के समान बर्ताव करती थी और मुट्ठी भर अन्न देते समय वह अत्यन्त प्रसन्नता तथा संतोष अनुभव करती थी।

सुखदेई सदाव्रत पूरा होने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करती थी। उसका कहना था कि जब वह काशी यात्रा के लिये गई थी तो वहां एक वृद्धा साधुनी ने उसे यह उपदेश दिया था—"तेरे हाथ की रेखाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि तू अपने हाथ से एक लक्ष्य मुद्रा का अन्न भूखों को वितरण करेगी।

सुखदेई के पति ने एक बड़ी जायदाद मृत्यु के समय सुखदेई के ही हाथों सौंप दी थी। नगदी जेवर सभी उसके ही हाथों में रहता था। उसके पति ला० रामशरण अपने जीवनकाल में भी सारा व्यय उसके ही हाथों से कराते थे। काशीधाम की यात्रा के समय लाला रामशरण दास जीवित थे। उन्होंने सुखदेई की इच्छानुसार अपने जीवनकाल में ही सदाव्रत खोलने की अनुमति दी थी। लाला रामशरणदास की पुण्य की कमाई बताई जाती थी। उन्होंने अपने जीवन में किसी के साथ कोई भी कठोरता का व्यवहार नहीं किया था। उनके पिताजी ने कितने ही निर्धन व्यक्तियों से ब्याज की मोटी-मोटी रक़म प्राप्त करके धन बटोरा था। लाला रामशरणदास ने होश सम्भालते ही इस बात का निश्चय कर

लिया था कि धन सञ्चय करने में वे अपने पिता के चरण-चिन्हों पर नहीं चलेंगे और उन्होंने इस बात को जीवन पर्यन्त निभाया।

(२)

उस दिन नन्हीं २ बून्दें पड़ रही थीं। आकाश में हल्के-हल्के बादल मंडरा रहे थे। बच्चे आकाश की ओर देखकर कौतूहलवश कह रहे थे—"बादल समुद्र से पानी भरने जारहे हैं।" मेरा ध्यान भी बादलों की ओर आकर्षित हो गया। मैं सोचने लगा कि देखो, ये बादल भी कितने परोपकारी हैं जो समुद्र की मूल्यवान निधि बटोर कर बिना किसी चाहना के लुटा देते हैं।

नीमो की दादी का सदाव्रत हल्की बूंदों में भी सदा की भांति आरंभ हो गया। कुछ समय से सुखदेई कुछ अस्वस्थ थी। इस कारण उसकी पड़ोसिन बीरो की मां भी उसकी सहायता करने के लिए आ जाती थी।

भिखमंगों में अधिकांश पुरुष होते थे; वैसे कुछ स्त्रियां भी आ जाती थीं। उनमें से एक वृद्धा अन्न लेने के पश्चात् कभी-कभी बैठी रह जाती थी और उससे सुखदेई अनेकों प्रश्न करने लगती थी। इस बूढ़ी भिखारिन के कोई संतान न थी, परन्तु उसके पास एक दस वर्षीय बालिका रहती थी। वृद्धा भिखारिन अपने साथ उस बालिका को कभी सदाव्रत में अन्न मांगने के लिए नहीं लाई। यह बात सुखदेई को ज्ञात थी और इसी कारण कभी-कभी सुखदेई उसे औरों से अधिक अन्न दे देती थी।

सुखदेई ने आज बीरो की मां से विशेष रूप से कहा—"इस बुढ़िया को कुछ अधिक चावल दे देना।"

उसने ऐसा ही किया परन्तु बुढ़िया से पूछा—"तुम किस मुहल्ले में रहती हो ?"

"नवाबवाली गली के छोर पर जो झोंपड़ियां बनी हुई हैं, उन्हीं में रहती हूँ ।"

"क्या तुम्हारे कोई कमाने वाला नहीं है ?"

"नहीं बहू ।"

"क्या तुम अकेली हो ?"

"एक बालिका मेरे जीवन के साथ और लगी हुई है ।" बीरो की मां ने आश्चर्य से पूछा—"तुम तो उसे अपने साथ कभी नहीं लातीं ?"

"नहीं !"

"यदि तुम उसे भी साथ लाओ तो तुम्हें दूना अन्न मिल जाया करे ।"

इतना सुन कर बूढ़ी भिखारिन का स्वाभिमान जाग्रत हो उठा । न जाने, उसे अपने जीवन की कौन-कौन-सी घटनाएं स्मरण हो आईं । उसने उत्तर में इतना ही कहा—"उस अबोध बालिका को भीख मांगने के लिए साथ लाने को मेरा मन नहीं करता ।"

"तो क्या तुम उसे कहीं भी भिक्षा के लिए नहीं ले जातीं ?"

"नहीं, मैं भी निराशा के कारण ही कहीं-कहीं दो-चार पैसों के लिए घर से निकलती हूँ ।"

बीरो की मां ने भिखारिन के स्वाभिमान भरे शब्दों को बड़े ध्यान से सुना । उसे आश्चर्य सा प्रतीत हो रहा था कि नीनो की दादी

के सदाव्रत में भिखारियों के साथ आने वाली भिखारिन दूसरे स्थानों में मांगने न जाती होगी। उसने अपने हंसमुख और विनम्र स्वभाव के अनुसार भिखारिन से पूछा—"तो क्या तुम पेट भरने के लिए कुछ और काम करती हो?"

"बहू! अपने पेट भरने के लिए कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। यहां के सदाव्रत में तो मैं माता जी के प्रेम को देखकर ही चली आती हूँ।"

भिखारिन उदास थी, न जाने उसका मन किन बातों को स्मरण करके किसी गम्भीर स्थिति में पड़ रहा था। उसके मुंह से सहसा ही निकल पड़ा—"बहू! यह सब ईश्वर की इच्छा है। मेरे घर पर ही किसी दिन सब कुछ था।" यह कहकर भिखारिन जाने लगी।

बीरो की मां सोचने लगी कि भिखारिन ने कुछ कहा भी, फिर भी बात स्पष्ट रूप से प्रगट नहीं की। रूप रंग से यह किसी सम्भ्रान्त परिवार की देवी प्रतीत होती है। उसने भिखारिन को ठहराते हुए पूछा—"क्या तुम्हारे कोई भी ऐसा सगा सम्बन्धी नहीं जो तुम्हारा और तुम्हारी छोटी बालिका का पालन-पोषण कर सके?"

"यदि ऐसा होता, तो फिर चिन्ता ही क्या थी?"

इस उत्तर को सुनकर सुखदेई ने भी भिखारिन से पूछ लिया—"तुम्हारे मालिक क्या काम करते थे? इतनी निर्धनता उनके सामने ही थी या उनके पश्चात् आई?"

भिखारिन ने विनम्र शब्दों में उत्तर दिया—'जब मेरा विवाह हुआ था, घर में ईश्वर की मौज थी। इस स्थान से आठ कोस की

दूरी पर पति रहते थे, और इस नगर में उनका कुछ चांदी सोने का व्यापार भी चलता था। अब से दस वर्ष की बात है कि उन को व्यापार में घाटा आया और इसी नगर के कोई ला० रामशरणदास थे, उनके बापने हमारी सारी जायदाद कुर्क कर ली। और तो और खाने पीने के बर्तन-भांडे, कपड़ा-लत्ता सभी धीरे धीरे नीलाम हो गया। मेरे पति मेहनत मज़दूरी करके भी पेट पालते रहे, परन्तु फिर भी क़र्ज़ पूरा न चुका सके और क़र्ज़ के भार से दबे हुए वे इस लोक से विदा हो गये।"

भिखारिन की आंखें डबडबा गईं। "क़र्ज़ के बोझ से दबे हुए विदा हो गये!"—शब्द कह तो दिये, परन्तु उसके हृदय पर उन शब्दों का भारी आघात पहुँचा। सुखदेई ने अपने पति ला० रामशरण दास का नाम सुनकर बहुत आश्चर्य माना, परन्तु वह भी जानती थी कि उसके ससुर बड़े लालची, स्वार्थी और ग़रीबों को चूस लेने वाले थे। सोचने लगी कि सम्भव है, उसके ससुर हीरालाल ने ही उस भिखारिन का सामान कुर्क कराया हो। केवल बात की खोज के लिए उसने भिखारिन से पूछा, "क्या तुम अपने पति का नाम बता दोगी?"

भिखारिन चुप थी। उसके मुंह से कोई शब्द न निकलता था। वह अतीत की स्मृति की उलझन में पड़ी हुई चिन्तित थी। उससे कई बार आग्रह से पूछा गया कि वह अपने पति का नाम बता दे। भिखारिन ने सुखदेई की भलमनसाहत का विचार करते हुए अपने पति का नाम बता दिया और उसके पश्चात् वह चली गई।

माघ प्रारम्भ हो चुका था। सुखदेई पन्द्रह दिन के त्रिवेणी स्नान के लिए जाने की तैयारी कर रही थी। उसने अपने साथ कई

साथिन ले जाने की आवश्यकता थी। उसने कई बार बीरो की मां को बुलाया और उस से कहा—"बहू! इस बार तो तुम मेरे साथ त्रिवेणी स्नान चलो।"

बीरो की मां घर से कब निकलने वाली थी। गृहस्थी के बखेड़े उसकी जान को लगे हुए थे। घर से बाहर कदम रखना वह अपने सिर पर भारी आपत्ति समझती थी। बाल-बच्चों के साथ को वह अपने लिए एक भयंकर तूफान समझती थी। इसका एक यह भी कारण था कि उसका ढीला शासन बच्चों को नियन्त्रण की सीमा में न आने देता था। इन सब बातों को सोच कर उसने सुखदेई को उत्तर दे दिया, "माताजी! मैं कहीं घर से बाहर नहीं जा सकती।" परन्तु साथ ही साथ उसने यह भी संकेत किया कि "यदि आप उचित समझें तो उस भिखारिन को अपने साथ क्यों न ले जांय। वह एक भली औरत जान पड़ती है। भिखारिन तो है नहीं, वह तो केवल प्रेमवश आपके सदाव्रत में अन्न लेने चली आती है।"

भिखारिन की बात सुनकर सुखदेई को कुछ पिछली बातें स्मरण हो आईं। वह कहने लगी—"बहू! उस दिन भिखारिन ने मेरे पति का नाम लेकर एक बात कही थी। मैंने उस भिखारिन के पति का नाम पूछ लिया था और फिर मैंने पुराने बहीखातों को अच्छी तरह से दिखवाया। उनमें कई जगह उस भिखारिन के पति रामधन का नाम लिखा मिला। मेरे यहां का एक बूढ़ा विश्वासपात्र नौकर भी यह कहने लगा कि माताजी अब से दस वर्ष पहले इस घर के बड़े मालिक सेठजी ने रामधन की सारी सम्पत्ति कुर्क कराली थी। इन सब

बातों से मुझे विश्वास हो गया कि उस भिखारिन का रुपया-पैसा, मकान, दुकान, सब ही सम्पत्ति मेरे ससुर के पास आई है। मैं सोचती हूँ कि अब यह सब सम्पत्ति इस भिखारिन को क्यों न लौटा दूं ?"

बीरो की मां ने कहा—"यह तो आप फिर सोच लीजिए, अब तो केवल उस भिखारिन को अपने साथ त्रिवेणी स्नान को लेजाओ। उपकार होगा, साथ ही आपको सहायता प्राप्त होगी। वह एक चाकर से भी अधिक आपकी सेवा करेगी। साथ ही उसका और उसकी छोटी बच्ची का भी त्रिवेणी स्नान हो जायगा।"

सुखदेई इस विचार से पूर्णतया सहमत हो गई। भिखारिन के झोंपड़े से उसे बुलाकर त्रिवेणी स्नान के लिए चलने को उसे सहमत कर लिया।

दो सप्ताह त्रिवेणी स्नान के पश्चात् पर्व का दिन आया। घाट पर भारी भीड़ थी। हज़ारों नर-नारी त्रिवेणी स्नान कर रहे थे। त्रिवेणी का सारा किनारा हज़ारों मील से आये हुए यात्रियों से भरा हुआ था। स्थान-स्थान पर पंडे अपने बड़े-बड़े पोथे यात्रियों को सुना रहे थे। सुखदेई भी अपने पंडे से अपने कई पुरखाओं की बातें सुन रही थी। पंडे ने बताया कि लाला रामशरणदास की मां दो सौ रुपये दान दे गई थी। उसने यह भी बताया कि उसके कई और पुरखा त्रिवेणी-स्नान करके दान-पुण्य में सैकड़ों रुपया दे गये थे। सुखदेई ने पंडे को सौ रुपये भेंट करके प्रसन्न कर दिया। साथ ही उसने पंडे से कहा—"महाराज! त्रिवेणी के घाट पर एक और संकल्प भी छुड़ा दीजिये।" पंडे को इसमें क्या आपत्ति थी, संकल्प छुड़ाने में भी उसे कुछ और प्राप्ति ही होगी। उसने अपने दूसरे साथी को पोथे के साथ

बिठा दिया और वह सुखदेई के साथ संकल्प छुड़ाने चला गया। त्रिवेणी की धारा में हाथ में जल लेकर सुखदेई ने बीस सहस्र रुपये का दान उस भिखारिन के लिये कर दिया। पंडा आश्चर्य में पड़ गया और कहने लगा—"माई! कहीं इस तरह कोई औरतों को भी संकल्प छोड़कर दान देता है।"

सुखदेई ने उत्तर में कहा—"महाराज! यह तो मैंने जल लेकर इसलिये प्रतिज्ञा की है कि कहीं मेरा मन घर पहुँच कर विचलित न हो जाय। यह तो मैं प्रायश्चित रूप से भेंट कर रही हूँ। अभी तो इसकी धरोहर और लौटानी है।"



जेल में बैरक से बाहर जाना कोई साधारण काम नहीं। जेल का शासन-प्रबन्ध ही ऐसा होता है कि प्रत्येक बंदी बैरक की चहार-दीवारी में बन्द रहे। कोई विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही जेल-अधिकारी अपने पास तक बुला सकता है। जेल की बैरक से बाहर आना जाना बन्दी के लिये ऐसा समझा जाता है कि मानो वह अपने नगर से किसी पास के नगर का भ्रमण कर आया हो। बैरक में वापिस लौटने पर साथी अनेकों प्रश्न पूछते हैं। यदि उनको ज़रा सा भी जेल के बाहर का समाचार सुना दिया जाता है तो वे ऐसा अनुभव करते हैं मानों उन्होंने स्वयं रेडियो पर समाचार सुन लिये।

ऐसा होना स्वाभाविक सी बात हो जाती है। एक ही स्थान पर निरन्तर सोना, खाना-पीना और दुख-सुख की घड़ियां व्यतीत करना पड़ता है। उस परिधि से बाहर का वातावरण कुछ भिन्न सा प्रतीत होता है।

यह तो रही जेल की एक साधारण झलक। अब आपको वास्तविक कथा की ओर ले जाना चाहते हैं। उस दिन हल्की वर्षा हो रही थी। दिन भी कुछ ठंडा था। हमारे साथी हल्की बून्दों में ही वालीबाल खेल रहे थे, कुछ इधर उधर गप उड़ा रहे थे और कुछ इधर उधर घूमते हुए मि० फ़िलिप के भारत आगमन पर अटकल लड़ा रहे थे। इसी समय अन्दर बैरक से आवाज़ आई "नेमी पागल हो गया।"

अभी अभी तो वह बाहर घूम रहा था। पागल कैसे हो गया। इस बात पर विश्वास न हुआ। समझा कि आपस की छेड़छाड़ में ही ऐसा कह दिया गया है। परन्तु फिर दो—तीन साथियों ने बैरक से बाहर आकर सूचना दी कि 'नेमी बहकी बहकी बातें कर रहा है।'

कुछ साथी बैरक के अन्दर गये। साधारणतया नेमी ठीक था। उसके शरीर पर कपड़े भी ज्यों के त्यों थे। उसने किसी भी वस्त्र को न फाड़ा था और न वह किसी को कोई अपशब्द ही कह रहा था। हां! केवल एक बात उसने कर डाली थी। दूध को बखेर दिया था और राशन में मिले मक्खन को लोटे गिलास कटोरी के ऊपर मल डाला था। वह कुछ गुनगुनाता था परन्तु उसका कोई भाव भी प्रकट न होने पाता था। 'नेमी' की यह दशा लगातार तीन चार दिन तक रही। सभी ने प्रयत्न किया कि वह कुछ संभल जाय परन्तु उसकी बातों में कोई परिवर्तन न हुआ। तीन—चार दिन के पश्चात् कई कई घन्टे के लिए वह चेतनाशून्य हो जाता था। भोजन भी वह न करता था। उसका मस्तिष्क उसे धोखा देने लगा। वह कहता 'तुम

लोग मेरे शिष्य हो मैं तुम्हारा मास्टर।' ये साधारण बातें थीं परन्तु उसकी मस्तिष्क की गति किसी दूसरी ओर लग रही थी।

एक सप्ताह बीत जाने पर उसे अस्पताल भेज दिया गया। 'नेमी' अस्पताल में भी केवल दो दिन ठहरा। वहां उसके विचारों में और परिवर्तन हुआ। वह अब कुछ बकने लगा।

सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल एक योग्य व्यक्ति थे। ऐसे व्यक्तियों के साथ उसे कुछ सहानुभूति भी थी। परन्तु जेल नियमों के आधार पर 'नेमी' को उसने पागलों की एकान्त कोठरी में बन्द करा दिया। बस अब 'नेमी' की दुनिया और भी अधिक सीमित हो गई। उसका अपने साठ पैंसठ साथियों का संग छूट गया। कम्बल व टाट का फर्श और पानी पीने का तसला उसके साथी रह गये। एकान्त कोठरी में रहकर 'नेमी' सुधरा नहीं किन्तु उसके मस्तिष्क ने उसे रहा सहा उत्तर भी दे दिया। वह हंसता था और कभी रोता था, कभी वह ध्यान ही न देता था और कभी एकटक होकर बीस-बीस मिनट तक घूरता रहता था।

हमें नेमी से मिलने का अवसर मिल गया। डाक्टर ने अस्पताल में आने की चिट दे दी थी। यही एक ऐसा मार्ग था जिसके आधार पर कैदी अपनी बैरक से बाहर अस्पताल तक जा सकता था। आप यह बात न समझें कि अस्पताल में जाना जेल की चहारदीवारी से बाहर जाना होता है। अस्पताल जेल के अन्दर ही बना होता है। जिस बैरक का रोगी होता है उसमें से बाहर निकल कर अस्पताल पहुँच जाता है। अस्पताल जाते समय हमने वार्डर से विशेष रूप से

कह दिया था कि तुम किसी प्रकार पागलों की कोठरी के सामने से निकाल कर अस्पताल ले जाना। इस प्रकार हमें अपने साथी 'नेमी' को अवलोकन करने का अवसर मिल गया।

नेमी चुपचाप बैठा था। लोहे के जंगले से बाहर उत्सुकता के साथ देख रहा था मानो कोई अपनी खोई हुई वस्तु को खोज रहा हो। हमने 'नेमी' को नेत्र भर कर देखा। 'नेमी' पहिले से काफी दुबला प्रतीत हो रहा था। उसके मुख का तेज फीका पड़ गया था। नेत्रों में वह ज्योति भी न दिखाई दे रही थी जो किसी समय विद्यमान थी। हम ने नेमी को प्रेम भरे शब्दों में सम्बोधन करते हुए पूछा, "भाई नेमी! तुम्हारा क्या हाल है?"

नेमी चुप देखता रहा। हमारी ओर उसने आंख उठाकर भी न देखा। परन्तु हमने फिर पूछा—"भाई नेमी! तुम अब ठीक हो?"

इस बार उसने सस्नेह नेत्रों से देखते हुए उत्तर दिया, "आप मुझे अपने पास बुला लीजिए।"

"अवश्य बुलाया जायगा।"

"वायदा करते हो?"

"अवश्य बुलाया जायगा, विश्वास रक्खो।"

"परन्तु ये लोग तो मुझे यहां से पागलखाने भेजना चाहते हैं।"

"नहीं ऐसा नहीं होगा! अब तुम ठीक हो गये हो। सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल से कहना वह तुम्हें हमारे पास ही फिर से भेज देंगे।"

नेमी को कुछ आशा बँधी। उसने गहरी सांस ली और साथ ही पूछा, "क्या आपकी सम्मति में मैं पागल हूँ? नहीं संजय! नहीं!!

मैं पागल नहीं ! संसार की ठोकरों से ठुकराया हुआ एक तुच्छ प्राणी हूँ।"

"नेमी ! यहां तुम्हारी और मेरी दुनिया एक ही है। जिस दुनिया के पागलखाने में तुम बन्द हो उसी में तुम्हारे दूसरे साथी बन्द हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम अपने मस्तिष्क को ज्ञान-तन्तुओं से अलग कर बैठे हो और तुम्हारे साथी ज्ञान के प्रकाश में रहकर पागल बने हुए हैं। अच्छा इस गहराई की बात को जाने दो। तुम शीघ्र हमारे ही पास आ जाओगे।"

(ब)

अब नेमी बड़ा प्रसन्न था। बार बार अपने साथियों को निमंत्रण दे रहा था। किसी को हलवे का निमन्त्रण देता तो किसी को दूध चावल का। आप यह न समझें कि बन्दी किसी को क्या खिलायेगा। बन्दी के पास सब कुछ हो जाता है। अपने को मिले राशन से न जाने वह कितने मित्रों को दावत खिला देता है। नेमी को हर प्रकार से प्रसन्न रक्खा गया।

पैरेड होने वाली थी। नियम था कि जो व्यक्ति जिस बात को चाहे सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के सामने प्रस्तुत कर दे। नेमी ने न जाने क्या क्या विचार बना रक्खे थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने पर नेमी ने एक सुन्दर फूलों का गुलदस्ता भेंट कर दिया।

कैदी के पास गुलदस्ता ? आप आश्चर्य क्यों करते हैं ? उसके शरीर में भी तो हृदय होता है। उस हृदय में विचार उठते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे जेल की चहारदीवारी से बाहर की दुनिया में रहने वाले व्यक्तियों के हृदय में उठते हैं। बैरक में कई प्रकार के पुष्पों की

लतिकायें फैली हुई थीं। नेमी ने रंग-बिरंगे पुष्प तोड़कर एक सुन्दर गुलदस्ता बना लिया था।

सुपरिन्टेन्डेन्ट उदार हृदय व्यक्ति था। उसने उस भेंट को स्वीकार कर लिया और मधुर शब्दों में पूछा, "नेमी बाबू! अब तुम पागल तो नहीं बनोगे?"

"यह सब आप पर ही निर्भर है।"

"तो क्या मैं तुमको पागल बना देना चाहता हूँ?"

"दुनिया वाले सभी पागल बनाने वाले हैं।"

"नेमी! तुम फिर बहकी बातें करने लगे?"

"नहीं साहब बहादुर! मैं सत्य कहता हूँ। आप विश्वास कीजिए, मैं स्वयं पागल नहीं बना दुनिया ने मुझे पागल बना दिया।"

"अच्छा, अब तुम ठीक रहो।" यह कहकर साहब बहादुर आगे बढ़ दिये।

परन्तु 'नेमी' की बातों में जो मर्म भरा था, उसे कौन सुझावे? नेमी कहता था कि दुनिया वाले पागल बनाते हैं, इसमें कहां तक सत्यता थी— इसका कौन निर्णय करे? आप इसका निर्णय कीजिये।

(स)

नेमी प्रसन्न चित्त नवयुवक था। उसके माता-पिता बचपन में ही छोड़कर इस संसार से विदा हो गये थे। फिर उसका क्या आश्रय था? केवल एक विधवा बहिन। नेमी उसे ही बाप समझता था और उसे ही मां। नेमी की बहिन ने ही उसे पाला-पोसा था और इतना बड़ा किया था। वह गूढ़ विचारों वाली एक वीराङ्गना थी। अपने परिश्रम से ही वह अपना पेट भरती थी और नेमी को पढ़ाती थी।

नेमी कहता था, "माधवी के चरणों में नित्य मस्तक झुकाना मैंने अपना कर्तव्य समझा। माता के समान उसके आशीर्वाद को प्राप्त करता रहा हूँ।"

ठीक है 'नेमी' ने ऐसा किया होगा। परन्तु आज जेल में बन्द 'नेमी' को उससे क्या प्रयोजन? नेमी के पागलपन का उससे क्या सम्बन्ध? तेरह मास उस बेचारी को भाई के दर्शन किये हो गये। फिर नेमी पागल क्यों बन गया।

नेमी ने जेल में अपनी विधवा बहिन का करुणा पूर्ण पत्र पढ़ा था कि उसके देवर ने मार पीट कर घर से निकाल दिया।

यही तो दुनिया वालों की बातें होती हैं। इसी समाचार ने तो नेमी को पागल बना दिया। संसार कितना कठोर है—इसमें कितनी पीड़ा भरी है—यदि आप जानना चाहते हैं तो पगले नेमी के हृदय को टटोलिये।

दो मास पश्चात् नेमी को पता चला कि उसकी बहिन खादी के उद्योगधन्धे से अपना पालन-पोषण कर लेती है—वह उसी में प्रसन्न है और अपने भाई के मुख कमल को अवलोकन करने के लिए सदा प्रतीक्षा में रहती है।

इसी विचार ने 'नेमी' को प्रोत्साहन दिया। वह जेल के सींकचों में बैठा हुआ अपनी बहिन की चरण-रज मस्तक पर लगाने का स्वप्न देखता था।

आज नेमी पागल नहीं—प्रसन्न था। परन्तु संसार की पीड़ा का ध्यान करके वह अब भी उद्विग्न हो जाता है। न जाने उसका मन संसार की किन किन कल्पनाओं में विलीन हो जाता है।

दीवान जी !

|||

सायंकाल के पांच बजे होंगे। उस दिन मैं जेल के अस्पताल से अपनी बैरक में वापिस आ रहा था। साथ में नम्बरदार था। नम्बरदार कैदी के लिये एक आसरा होता है और साथ ही कैदी पर कड़ी निगरानी रखने वाला छोटा आफीसर। वैसे तो वह स्वयं भी एक कैदी ही होता है और कैदी के समान ही जेल में उसे अपना समय व्यतीत करना पड़ता है। परन्तु जेल के शासन को अच्छी तरह से चलाने के लिये कैदियों में से कुछ व्यक्ति अपनी कुछ विशेषताओं के कारण नम्बरदार बना दिये जाते हैं और उनको कई प्रकार के अधिकार भी प्राप्त होते हैं। उन सब अधिकारों का आशय केवल यही होता है कि नम्बरदार अपनी टुकड़ी के कैदियों पर सब प्रकार की निगरानी रक्खे। उसका काम था कि हमें वह चुपचाप बैरक से निकाल कर अस्पताल ले जाय और बिना किसी से वार्तालाप कराये हुए फिर बैरक में लाकर बन्द कर दे। परन्तु कभी कभी नम्बरदार लोग उदारता से भी काम लेते हैं और कैदी के अनेकों प्रकार के काम निकाल देते हैं। वे एक बैरक के कैदी की दूसरे बैरक वाले कैदी से भी भेंट करा देते हैं। जेल का संसार इसी विलक्षणता के साथ चलता रहता है।

यह तो हमारे नम्बरदार की बात हुई। अस्पताल से आते हुए हमें एक लोहे के फाटक के बीच से निकलना पड़ा। फाटक के नम्बरदार ने खिड़की बन्द की हुई थी। वह बड़ी फुर्ती के साथ बार बार ताला खोल देता था और आने जाने वाले कैदी उसमें से निकलते रहते थे। जिस समय हम उस लोहे के द्वार पर पहुँचे तो हमने एक व्यक्ति को बगल में कम्बल और पट्टा (मूंज का फर्श) दबाये हुए द्वार से निकलते देखा। वह कुछ परिचित सा जान पड़ा और स्मृति दौड़ाने पर पता चला कि वह कभी जेल से बाहर मिला था। उसने स्वयं ही पूछा—"आप यहां कब से ?

"मुझे यहां आठ मास से अधिक हो चुके।"

नम्बरदार ने हमें आदेश किया—"उनसे बातें न की जांय। यदि कोई जेल अधिकारी देख लेगा तो मेरी पेशी हो जायगी।"

उसके ऐसा कहने पर भी एक दो मिनट वार्तालाप हो गया और उस कैदी ने चलते चलते कहा—"शायद आपने मुझे नहीं पहचाना ...... चौकी पर मैं दीवान था।"

"अच्छा दीवान जी, आप यहां कैसे फंस गये ?"

"फिर आप मिलेंगे तो बतलाऊंगा।"

नम्बरदार ने चलते चलते दीवान जी के साथ वाले दूसरे नम्बरदार से कहा—"ज़रा इनका ध्यान रखना, ये दीवान जी हैं,"

२

साढ़े छः बजे बैरक बन्द हो गई। साथी अपने अपने स्थान पर बैठ गये। उस समय हमारे कुछ साथी सायंकाल के समय के

भक्तिपूर्ण सन्त-कवियों के पद सम्मिलित रूप में गाते थे। कभी कभी तो ऐसा तारतम्य बंधता था मानों सूरदास के शिष्य अथवा मीरा के पुजारी अपने अपने इष्टदेव की आराधना में मग्न हैं।

कुछ ऐसे भी साथी थे जो बैरक बन्द होते ही बैरक की लालटेनें संभालते और उन पर अपना अधिकार जमाकर ताशपार्टी एकत्रित कर बैठते थे।

कैदियों का समय सभी प्रकार के मनोरंजन द्वारा कटता है। जिसकी जैसी भावना और इच्छा होती है वह उसी के अनुसार अपने आप को बनाने का यत्न करता है। उस दिन हमने काफी समय इस बात की उधेड़-बुन में लगा दिया कि दीवान जी से कहां परिचय हुआ था।

सन् १६३५ में हरिद्वार में कुम्भ-मेला हुआ था और किन्हीं कारण से उस मेले में भीषण अग्निकाण्ड हो गया था। हमें याद है हमने एक महिला को देखा था। हर की पैड़ी के सामने धार के पार वह खड़ी थी। उसका क़द छोटा था, शरीर कुछ भारी, रंग सांवला था और चेहरा गोल। उसको देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानों वह किसी भीषण कलङ्क के कारण अपनी शीलता को खो बैठी है। हमने देखा कि एक व्यक्ति कई बार उसके पास आया और न जाने उसे क्या दे गया। इतनी हमें अच्छी तरह याद है कि उसने एक चमड़े का सूटकेस भी दिया था। इस व्यक्ति से हमने कोई विशेष वार्तालाप करना उचित न समझा क्योंकि मेले को अग्नि की लपटों में जलते देख कर हमने यह अनुमान लगा लिया था कि वह अपने

किसी विशेष कार्य में लीन है परन्तु यही तो दीवान जी थे जिनसे कई बार मेले के दिनों में वार्तालाप करने का अवसर मिला था।

इस घटना के लगभग दो वर्ष पश्चात् फिर उनसे अच्छी तरह साक्षात् करने का अवसर मिला। वह अपने एक आफिसर के साथ हमारी तालाशी के लिए आए थे।

दीवान जी का लम्बा क़द था। शायद उनके क़द के समान दस–पांच ही व्यक्ति जेल में हों। रंग गोरा और शरीर अच्छा हट्टा–कट्टा था। मूंछें लम्बी थीं, और नाक कुछ चपटी। उनके चेहरे से काफी प्रभुत्व प्रकट होता था। विचारों के बारे में हमें कोई विशेष ज्ञान न था। हां! इतना कई बार सुना था कि वो सख़्त मिज़ाज़ आदमी हैं। कुछ भी हो, हमारे साथ तो उन्होंने नर्मी का ही वार्तालाप किया था। जिस महिला का हमने वर्णन किया है उसका परिचय स्वयं दीवान जी ने कुम्भ मेले पर दिया था। वह उनकी पत्नि थी।

इस प्रकार हम दीवान जी की स्मृति को बैरक में बन्द पड़े पड़े काफी समय तक ध्यान में लाते रहे और हमें यह भी सोचने का अवसर मिला कि न जाने दीवान जी ने कितने व्यक्तियों को जेल में बन्द कराया होगा।

२

रात्रि के नौ ही बजे थे कि किसी के चीखने की आवाज़ आई। ऐसी आवाज़ को सुनकर प्रायः सभी कैदी शान्त हो जाते हैं और इस बात का प्रयत्न करते हैं कि वे चीखने वाले व्यक्ति के बारे में दिलचस्प बातें तुरन्त जान लें।

जेल में रात्रि को कड़ा पहरा रहता है। लोहे के सात तालों में बन्द कैदी के भाग जाने का जेल अधिकारियों को डर बना रहता है और वे इस बात की पूरी सावधानी रखते हैं कि कोई भी दुर्घटना न होने पावे। हर तीस मिनट में चाबी वाला वार्डर बैरक के बाहर चक्कर लगाता है और जंगला, ताले आदि को देखता है। उसके आने पर कभी कभी दूसरी बैरकों के समाचार भी मिल जाते हैं। नियमानुसार तो वह किसी से बात नहीं कर सकता, न किसी एक कैदी की बात दूसरे कैदी से कह सकता है परन्तु मनुष्य का हृदय रखने वाला व्यक्ति चलते चलते कभी कभी दो चार बातें कर ही लेता है। चाबी वाला वार्डर भला आदमी था। भला इस लिए कि बोलने चालने में वह सभ्यता से काम लेता था। अपनी भलमनसाहत के नाते उसने बताया कि अभी दो दिन पहले जो दीवान जी नम्बर ७ की बैरक में आये थे उन्हें किसी अखलाकी कैदी ने पीट दिया!

मनुष्य ही तो है जो अपने कामों से शत्रु बना लेता है और कभी मित्र। दीवान जी के प्रति न जाने कैदी की कौन सी भावना जाग्रत हुई होगी, इसे हम नहीं समझ पाये।

४

बैरक में यही चर्चा चल रही थी कि दीवान जी चोरी में पकड़े गये हैं। कोई कहता था कि उनके घर से पुलिस ने ज़ेवरात का एक सन्दूक पकड़ा है और कोई कहता था कि उनकी घर वाली के पास रेशमी ज़रदार साड़ी पकड़ी गई है। कोई कहता था कि उनके पास से कुछ कारतूस और एक बन्दूक पकड़ी गई है। अपने अपने पक्ष में प्रत्येक बन्दी युक्तियां भी देता था और अपनी सत्यता के लिए ऐसे

ढंग से बातें करता था मानों वह स्वयं दीवान जी के घर की तलाशी लेकर आया हो।

बन्दूक व कारतूस वाला पक्ष लोगों को अधिक जचता था। उसके प्रमाण में कहा जा रहा था—"तभी तो दीवान जी की ज़मानत भी न हुई।"

मनुष्य अपने पद की यदि रक्षा करता रहे तो शायद संसार में दोषों का जन्म न हो। दीवान जी के हाथ में जनता की सुरक्षा का भार था। उनका काम था अपने हल्के में चोरी न होने देना। उनका काम था अपने हल्के में शान्ति स्थापित करना। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर जो व्यक्ति अपना कर्तव्य पालन करते हैं वे सुयोग्य कर्मचारी कहलाते हैं। जेल के कैदी बाहर चाहे जैसे रहें परन्तु जेल की चहारदीवारी में उनकी परख शक्ति बहुत बढ़ जाती है। बदमाश—बदमाश की ताक लगा लेता है। यह बात नहीं है कि सज्जन जेल में न जाते हों। वे भी कभी कभी शिकार हो जाते हैं।

कैदियों ने दीवान जी को एक सप्ताह में ही परख लिया। वे समझ गये दीवान जी क्या हैं।

लगातार दो सप्ताह तक यही सुनने में आता रहा कि दीवान जी बड़े परेशान हैं। प्रति रविवार को उनकी मिलाई होती परन्तु फिर भी वे ज़मानत पर न छूट सके। बहुतेरा प्रयत्न किया गया परन्तु उन्हें सफलता न मिली।

एक महीना बीत गया। दीवान जी अस्पताल में दवा ले रहे थे। हमने भी उस दिन पहली बार उनकी दयनीय दशा देखी। दीवान जी कहने लगे "जेल काटना मुश्किल हो रहा है। ज़मानत की भी अभी तक कोई आशा नहीं।"

"दीवान जी अभी तो आप विचाराधीन कैदी हैं। कोई काम नहीं करना पड़ता। केवल बैरक में ही तो बन्द होते हो।"

वह कहने लगे—"क्या इससे भी कोई कड़ी कैद भुगतनी होगी?"

"हां!"

"फिर तो भाई ज़िन्दगी की आशा छोड़नी ही पड़ेगी।"

"ऐसा क्यों कहते हो दीवान जी। आप भी तो मानव प्राणियों के कष्ट का कुछ अनुभव कीजिए। हम लोग दो दो वर्ष से बन्द हैं परन्तु इतना कष्ट अनुभव नहीं करते। समझते हैं इसका क्या कारण है? हमारा नैतिक बल।"

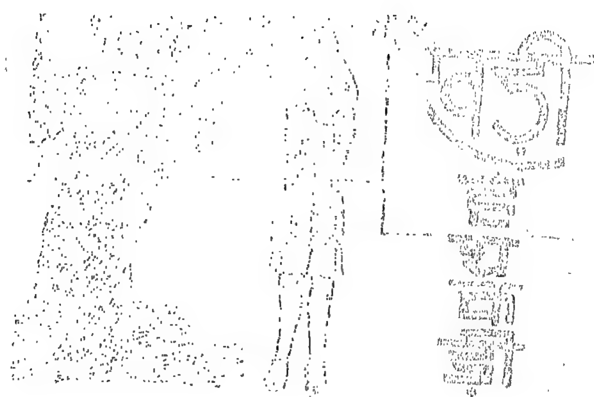
दीवान जी चुप थे। उनके मुंह से बोल न निकलता था। वह उस क्षण की प्रतीक्षा में थे जब ज़मानत पर छूट कर घर जांय, वह कहते थे—"यदि मैं ज़मानत पर छूट गया तो फिर मुक़दमा तो मेरे पक्ष में हो ही जायगा।"

हमने कहा—"दीवान जी! चीख़ पुकार अधिक मत किया करो।"

"यह सब मेरे अधिकार की बात नहीं। कैदी मेरे प्रति क्रूर भावना रखते हैं। न जाने मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है।"

"दीवान जी! प्रतिहिंसा की भावना मानव-समाज में अभी तक विद्यमान है। इसे जब तक नष्ट न किया जायगा तब तक इसमें से पीड़ा का ही जन्म होगा। आप यहां से यदि मुक्त हो जायें तो इस प्रतिहिंसा की भावना को मिटाने के लिये मनुष्योचित कर्त्तव्य का पालन कीजिए।"

उसकी आंखें कुछ गीली हो आईं। वह अपने किये पर कुछ पश्चात्ताप कर रहा था।



गर्मी के कारण बैरक में बैठना कठिन हो रहा था। वायु की गति बंद थी। पंखा झलते झलते मन अकुला रहा था। बैरक के बाहर दो नीम के पेड़ एक कोने में खड़े थे और दूसरी तरफ दो नीम के पेड़ बीच के हिस्से में थे। उनके पास एक पीपल का पेड़ भी था। नीम के नीचे कम्बल बिछाये हमारे साथी एक तरफ़ शतरंज खेल रहे थे और दूसरी तरफ़ ताश।

पीपल के वृक्ष की छाया में हमारे साथियों ने दूसरी पार्टी शतरंज की जमा रक्खी थी। दोनों पक्ष खेल में तल्लीन थे। एक पक्ष के केवल दो पैदल मरे थे और दूसरे पक्ष के तीन पैदल, एक घोड़ा और एक ऊंट मर चुके थे। हमें शतरंज के खेल का कोई ज्ञान न था। देखने मात्र से केवल इतनी जानकारी हो गई थी कि पैदल कैसे आगे बढ़ता है और घोड़ा कैसे ढाई घर चलता है। कुछ देर शतरंज देखकर मैं वहां से उठ गया। पीपल के वृक्ष पर ऊपर को दृष्टि डाली। उसके एक तने में लोहे का एक कड़ा पड़ा था। उसकी ऊंचाई उस समय चबूतरे से साढ़े छः फुट होगी। समझ में नहीं आया कि इस पीपल के वृक्ष में यह मोटा लोहे का कड़ा क्यों डाला गया? कड़े में

काफी जंग लगा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका बहुत दिनों से कोई प्रयोग नहीं हुआ है। जेल में रहने वाले व्यक्ति ज़रा ज़रा सी बात में कल्पना शक्ति का प्रयोग करने लगते हैं। चौबीस घंटे के समय में से सोने का समय निकाल कर बाक़ी समय ऐसे ही तो बिताया जाता है। खाना, पीना, खेलना, कूदना, पढ़ना और कुछ चर्चा करना कैदी के कार्यक्रम के मुख्य अंग हैं। चिलमचियों का समय हुक्के में भी बीत जाता है।

हमने अपने एक साथी से पूछा "क्या आप बता सकेंगे कि उस पीपल के पेड़ में लोहे का कड़ा क्यों डाला गया है?"

हमारे साथी ने उत्तर दिया कि इस बात को ठाकुर से पूछिये उनको इसकी जानकारी होगी।

ठाकुर बड़ा मसखरा व्यक्ति था। वैसे बड़ा उदार था। अपने साथियों के साथ जहां वह विनोदपूर्ण ढंग से बातें करता था, वहां किसी कष्ट के आ जाने पर वह सेवा करने में कमी न रखता। उसने उत्तर में कहा "यह कड़ा मुझे फांसी देने के लिये डाला गया था।"

"ठाकुर! ठीक बताओ।"

"तो क्या मैं झूठ बोलता हूँ।"

"भाई! फांसी घर तो यहां से दूर चक्कर से बाहर बना हुआ है। इस कड़े का फांसी से क्या सम्बन्ध?"

"पहिले इस कड़े पर ही तो फांसी लगती थी।"

"वह किस प्रकार"

"तो क्या मैं फांसी खाकर बताऊं?"

"नहीं ! वैसे ही बतादो ।"

"इस बात को चचा फुल्लू से पूछो ।"

"अरे भाई ! मज़ाक को रहने दो । सीधी सी बात पूछी थी और तुम न जाने कहां कहां की बातें करने लगे । कभी इसे फांसी घर बताते हो और कभी चचा फूल्लू से पूछने की बात कहते हो । तुम पुराने राजनैतिक कैदी हो । कई बार जेल काट चुके हो । यदि तुम्हें ठीक ठीक पता हो तो बतादो ।"

"मैंने एक बात भी मज़ाक की नहीं कही है । सारी बातें ठीक हैं । तुम चचा फुल्लू से पूछने में क्यों घबड़ाते हो ? अच्छा जाने दो मैं ही तुमको बताऊंगा कि यह कड़ा क्यों और कब डाला गया था ।" ठाकुर इतना कहकर कुछ आह सी भरने लगा । उसके भाव बदल गये और ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह किसी अतीत की स्मृति के कारण व्याकुलता अनुभव कर रहा है ।

मेरा साथी बड़ा तेज़ और वीर था । संकट के सामने कभी घबड़ाने वाला न था । उसने कितनी ही बार जेल के उतार चढ़ाव देखे थे और अपने विनोदी स्वभाव के कारण वह अपना और दूसरों का काम भी निकालना जानता था ।

उसने कहा "भइया ! क्या पूछते हो । इस पर मैं लटका था । मेरे दोनों हाथों में खड़ी हथकड़ियां लगाई गईं थीं और इस कड़े में हाथों को डाल दिया गया था । मेरे पैर भूमि से चार पांच इञ्च ऊंचे उठे हुये थे और लगातार पांच सात घंटे इस पर लटका रहा था ।"

"फिर क्या हुवा ?"

"जाने भी दो फिर क्या हुवा ? तुमको बात बता दी। यह उपयुक्त समय नहीं कि उस मनोव्यथा का विचार किया जाय। ऐसी बातें तो होती ही रहती हैं।"

"परन्तु ठाकुर! तुम चचा फुल्लू से क्यों पूछने को कहते थे ?"

"वह भी इस पर लटकाया गया था ?"

"उफ! वह तो तुम से ८ इञ्च लम्बाई में कम है। उसके पैर तो भूमि से १२ इञ्च ऊंचे रहे होंगे ?"

"इस मार्मिक व्यथा को क्या पूछते हो ? उसके पेट की नसें खिच गई थीं। दोनों हाथों से खून की धार बहती थी। वह मरणासन्न दशा में इस कड़े से उतारा गया था। कोई यह अनुमान भी न लगा सकता था कि चचा फुल्लू बचेगा।"

"ठाकुर! क्या दूसरे जेल के साथियों में ऐसे अत्याचार को रोकने का साहस न था ?"

"तुम अब की जेल का अनुमान लगाकर ऐसी बातें पूछते हो अब तो जेल साधारण बात है। उस समय जेल काटना सरल न था। बड़े बड़े कष्ट दिये जाते थे। जिस समय मुझे और चचा फुल्लू को कड़े पर लटकाया गया था, उस समय बैरक बंद कर दी गई थी। जेलर, डिप्टी जेलर, वार्डर सभी पीपल के पेड़ के नीचे एकत्रित थे और पास ही सात समुद्र पार से आया हुआ गोरा सुपरिन्टेन्डेन्ट खड़ा था जिसने ऐसा अमानुषिक कृत्य करने का आर्डर दिया था। समझे।"

"ठाकुर ! तुम इस खूनी कड़े को यहां से इसी समय उखाड़ डालो। ऐसा कड़ा तो यहां रहना भी नहीं चाहिये। इस पुरानी कहानी से तो हृदय में वेदना उत्पन्न होती है।

तुम लोग धन्य हो जिन्होंने जेल में ऐसे भीषण अत्याचार सहे।"

"बीते दिन का स्मरण कराने के लिये इस कड़े को पीपल में ही लगा रहने दो। हमें पता तो चलता रहे कि जेल में कैसे कैसे अत्याचार होते हैं और नवयुवक किस तरह से उन्हें हंसते हंसते सहन कर जाते हैं।"

"सत्य कहते हो ठाकुर ! इसे ऐसे ही पीपल में लटका रहने देना चाहिये।"

"देखो ! यह कड़ा १६३० में गाड़ा गया था। इसके बिना जेल वालों का काम न चलता था। वे समझते थे कि जेल में जितनी सख्ती की जायगी उतनी बृटिश हकूमत की जड़ मज़बूत होगी। परन्तु उनका ऐसा अनुमान सर्वथा मिथ्या रहा। यह लोहे का कड़ा हमें शक्ति देता है—भारी से भारी कष्ट को हंसते हंसते सहन करने की। इस खड़ी हथकड़ी के रहस्य को अब आप समझ गये होंगे ?"

मेरा मन अशान्त हो गया। ठाकुर ने मेरी गम्भीरता को देखकर कहा "आओ ! जेल में न जाने ऐसी कितनी बातें हुई हैं।"



[एक]

"क्या सच है सेठ जी ? क्या सचमुच पुलिस सब-इन्सपैक्टर ने आपको खरी खोटी सुनाईं ?

"इसमें शक की क्या बात है। मैं ही अकेला क्या, कई व्यक्ति और भी थाने में बुलाये गये थे। पुलिस का दीवान बुलाने आया था। सबको जाना ही पड़ा।"

"असिल मामला क्या था ?"

"वही चन्दा। किसी से पांच सौ, किसी से ढाई सौ और किसी से हज़ार मांगा गया। हम लोग मण्डी की तरफ़ से एक हज़ार रुपया देने को कहते थे लेकिन इसे कम बता दिया गया।"

"फिर ?"

"बड़े दारोग़ा जी ने धमकाया और कहा कि तुममें से एक शख़्स भी ऐसा नहीं जिसका चालान न किया जा सके। तुम लोग ऊंची ऊंची रकमें मारते हो। हम लोग रात दिन नज़र अन्दाज़ करते हैं, फिर भी आप लोगों की ये हरकतें हैं।"

"इस पर क्या हुआ ?"

"सब खामोश थे। आपस में एक दूसरे का मुंह ताकने लगे और सबने यही सलाह की कि यहां से चलकर मंडी में सबको बुलाकर तै किया जाय। लेकिन हमें जवाब देने का अवसर भी न मिला था कि इंस्पैक्टर साहब गरज उठे, "क्या सोच रहे हो ? आखिर फैसला करके जवाब दो।" हम लोगों ने एक हज़ार रुपये देने के लिये कह दिया, परन्तु इतने पर वह किसी तरह भी तैयार न हुए और हुक्म दे दिया कि पांच हज़ार तुम लोग शाम तक जमा कर जाओ।"

"तुम लोगों ने फिर क्या किया ?"

"पांच हज़ार रुपये की रक़म देने की मंजूरी देनी ही पड़ी और वहां से पीछा छुड़ाकर मंडी में पंचायत करके सबने पांच हज़ार रुपये जमा कर दिये।"

[दो]

देश पर आपत्ति के काले बादल मंडला रहे थे। सप्लाई इंस्पैक्टरों का गली गली मुहल्ले मुहल्ले प्रभुत्व जमा हुआ था। किसी की मुंडी मूंछों से जनता घबड़ाती थी तो किसी की लम्बी और तनी हुई मूंछों से भय उत्पन्न होता था। किसी के मस्तक का छोटा सा तिलक देखकर ही घबराहट पैदा होती थी तो किसी के सूट से डर लगता था। उनका पास से निकल जाना पनवाड़ी को भी भयभीत कर देता था। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। तीन पैसे का माचिस का बक्स पनवाड़ी भी तो चार पैसे में बेचकर नफ़ाखोरी का शिकार बन सकता था। खोमचे वाले को भय था कि कहीं इंस्पैक्टर साहब किसी

मिठाई में खोया न बता दें, चूंकि खोये की मिठाई बनाना और बेचना सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करना था। फल बेचने वाला समझता था कि किसी मेवा के दामों पर ही कन्ट्रोल भंग का अपराध न लग जाय। और तो और मामूली सागभाजी बेचने वाली भी इंस्पैक्टर साहब की चढ़ी हुई त्यौरी से भयभीत थी कि कहीं आलू की अधिक क़ीमत लेने का ही उस पर मुक़दमा न लग जाय। बड़े लाला लोगों की तो बात ही दूसरी थी। गोदाम ख़ाली दिखाई पड़ते थे। रजिस्टर, बहीखाते मुकम्मिल रखने होते थे।

फिर भी इन सभी में से प्रतिदिन कोई न कोई चक्कर में आते ही रहते थे। एक व्यक्ति की भी जांच हुई तो सारा बाज़ार सन्नाटे में पड़ जाता था। कई कई घंटे इंस्पैक्टरों के मकान के सामने खड़े रहना पड़ता था तब कहीं उनसे दो चार मिनट बातें होती थीं।

[तीन]

रात्रि का गहरा अन्धकार मिटा। उषा की लालिमा प्रगट हुई। सूर्य देव की किरणों का प्रकाश फैला। जनता ने अभिवादन किया। बच्चों ने प्रसन्नता प्रगट की। गृह महिलाओं ने पुरुषों के मस्तक पर सान्त्वना का अनुभव किया। घर और बाहर की सम्भाल प्रारम्भ होगई।

बीरो की मां ने कहा—"अब तो कोई झगड़ा बाकी नहीं?" सत्तो की ताई ने पूछा "अब तो कोई परचा वरचा काटने का काम नहीं रहा?" और — और सुरेश की भाभी ने पूछा —"अब तो कन्ट्रोल के दफ़्तर में हिसाब दिखाने न जाना पड़ेगा?" यह सब

विचारधारा परिवर्तित हो रही थी परन्तु सरकारी आतङ्क किसी न किसी रूप में बना ही हुआ था। लाला मिरचीलाल ने गांधी टोपी लगाकर कांग्रेस सभाओं में आना जाना प्रारम्भ कर दिया था। पूरे चार वर्ष से वे चुप थे। परन्तु अब वे कहने लगे थे, "कांग्रेस को कन्ट्रोल के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठानी चाहिये।" कभी कभी वे कांग्रेस कार्यकर्ताओं को कुछ उपदेश भी झाड़ देते थे। परन्तु यह केवल उनके ही साथ होता था जो किसी कारण से उनका सन्मान करते थे, या जिनके बाप दादा उनके बाप दादाओं के पास उठते बैठते थे। कार्यकर्ता तो उनकी बातों की मखौल उड़ा देते थे। उनके लिये लाला मज़दूरों का खून चूसने वाले व्यक्ति से अधिक न थे। उनकी कोई ऐसी विशेषता ही न थी जिसके कारण कार्यकर्ता उनकी प्रतिष्ठा करते।

उनके एक दूसरे साथी ने तो कुछ दिन पूर्व ही चमारों को पिटवा दिया था। कारण यही था कि वे लोग उसकी बेगार में न आये थे। खेत क्यार पर दो रुपये की मज़दूरी करने वाले व्यक्ति को अपना धंधा छोड़कर बेगार में जाना ठीक भी तो नहीं लगता। मंदे का ज़माना था, तब दो चार घंटे ज़मींदार की ताबेदारी बजा आना मज़दूर के लिये कठिन बात न थी।

उनके एक तीसरे साथी ने गांव में भंगियों के लिये बनाये जाने वाले कुएं के लिये पांच रुपये देने से भी इंकार कर दिया था।

[चार]

एक सप्ताह से नगर में धूम थी—माननीय पन्त जी मेरठ ज़िले का दौरा करेंगे। बच्चों में उमंग थी अपने अपने स्कूल की ओर से

अधिक से अधिक भेंट समर्पण करने की । महिलाओं में चाह थी पांच हज़ार की थैली भेंट करने की। प्रत्येक संस्था के संचालक प्रयत्नशील थे अधिक से अधिक धन संग्रह करके माननीय पन्त जी की सेवा में अर्पण करने के लिये।

महिलाएं घर घर जाकर कांग्रेस का सन्देश सुना रही थीं। प्रमुख नेतागण बड़े बड़े असामियों की खबर ले रहे थे। पल्लेदार उमंग में अपनी मज़दूरी के पैसों में से रुपये एकत्रित करने में व्यस्त थे। हरिजनों के छोटे से मुहल्ले में भी धन एकत्रित हो रहा था। सभी में चाह थी कांग्रेस की सेवा करने की!

श्री शर्मा जी प्रयत्न कर रहे थे बड़े बड़े व्यापारियों से धन प्राप्त करने का। उनके साथ अन्य एक दो व्यक्ति और भी थे। एक स्थान पर उन्होंने एक लाला से मिलकर मंडी में धन संग्रह करने का विचार किया।

लाला के दांत कुछ लम्बे थे, चेहरा कुछ भारी था, नाक कुछ उठी हुई थी, क़द कुछ ठिगना था और ज़बान में कुछ तुतलाहट थी। चीनी के व्यापार में वे काफी लाभ उठा चुके थे। मंडी में धाक थी। धाक ही क्या? कुछ लोगों का उनसे काम निकल जाता था, वे उनकी कुछ बात मान लेते थे। कहा जाता है कि उनकी दादी ने हरिद्वार में पंडे को कम दक्षिणा देनी चाही थी। इस पर पंडे ने उसका संकल्प छुड़वाने से इंकार कर दिया था। उन दिनों लाला के घर में पैसे की कमी भी थी। परन्तु अब? अब तो भगवान की सब प्रकार की कृपा थी। यह सब कुछ था, पर उनका दिल न बदला था। उनकी फटी मैली धोती उनके कम खर्च का प्रमाण देती थी। कुरते की बांह

ऊपर से फटी हुई देखने में आती थी। और तो क्या सिर का साफा भी न जाने कितने महीनों से न धुला था। परन्तु पैसा मांगने वालों को उनके इस रूप से क्या मतलब? वे तो केवल यह पता लगाते हैं कि किस पर कितना धन है?

लाला इन मांगने वालों से बड़े चौकस थे। अपनी दुकान से ही देखा दो तीन व्यक्तियों को और फिर चुप से उठकर चले गये। पता नहीं कहां? परन्तु शर्मा जी ने देखा, अभी अभी लाला सामने के चबूतरे पर खड़े थे। दुकान पर पहुँच कर लाला को आवाज़ लगाई परन्तु कुछ भी भेद न खुला। तीन चार बार शर्मा जी उनकी खोज में जा चुके थे। फिर अब समय ही कहां था। पन्त जी का परवाना आ चुका था—२१ तारीख़ को मेरठ पहुँचने का। आज २० तारीख़ तो थी ही। पांच सात मिनट शर्मा जी खड़े रहे। पास पड़ौस में पूछा, परन्तु सफलता न मिली।

मूंग और उड़द की दाल की तैयारी हो रही थी। पाला मार जाने से अरहर की फ़स्ल ख़राब हो गई थी। इस कारण उड़द व मूंग का भाव बढ़ गया था। फ़स्ल में जिन लोगों ने उड़द व मूंग भर लिये थे, उन्हें काफ़ी लाभ था। दाल तैयार कराकर बेचने में तो और भी अधिक लाभ था। फिर कन्ट्रोल का भी तो झगड़ा न था। दाल दलने वाली ने शर्मा जी की व्यग्रता देखी। उसने चकले को रोककर पूछा—"लाला को पूछते हो?"

"हां, हां, उन्हीं को।"

"वे ऊपर गये हैं।"

"रास्ता किधर से है?"

दाल दलने वाली ने शर्मा जी को ज़ीना बता दिया। ज़ीने की विचित्र दशा थी। चढ़ते समय काफी झाड़ झंखाड़ को पार करना पड़ा। शायद कमरे पर कभी कोई बाहर का व्यापारी आ ठहरता हो। किसी अपटूडेट बाबू साहब का कमरा तो था ही नहीं। शर्मा जी से ऊपर कमरे में खड़ा नहीं रहा गया। यह कहकर कि दो तीन सज्जन आपकी नीचे बाट देख रहे हैं वे उनको नीचे ले आये।

लाला जी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "कहिये क्या आज्ञा है? हुकुम कीजिये।"

"कांग्रेस की तरफ से श्री पन्त जी को १ लाख रुपया मेरठ ज़िले से भेंट किया जायगा। आपकी सेवा में भी उसी के लिये उपस्थित हुए हैं। तीन बार आ चुके आपके दर्शन न हो पाये।"

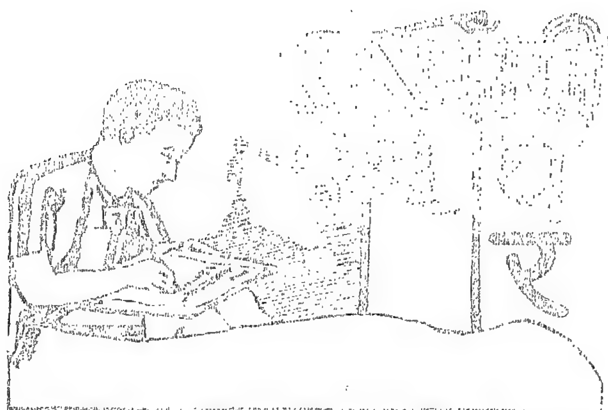
लाला ने नीचे ऊपर कई बार देखा। पीछा छुड़ाना कठिन था। बहुत सोच विचार कर उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला और जो कुछ उनके पास था, शर्मा जी के सामने प्रस्तुत कर दिया।

शर्मा जी चकित होकर बोले, "दस पैसे!" ये तो मेरे कोठे पर चढ़ने उतरने की मेहनत का भी मावज़ा नहीं।"

"बस जी इससे अधिक इस ज़माने में हमारे बस का नहीं" यह कह कर लाला जी अन्दर दुकान में चले गये। उन्हें कांग्रेस वालों से उस समय कोई काम न था और न कोई काम निकलने की आशा थी।

× × ×

बाहर आने पर दाल दलने वाली ने भी दस पैसे अपनी पहले दिन की कुल बचत के रूप में श्रद्धा पूर्वक शर्मा जी को भेंट किये।



(१)

सायङ्काल के ठीक पांच बजे होंगे, मुझे मेरे मित्र प्रेम प्रकाश ने सूचना दी—"आप तुरन्त सचेत हो जाइये अन्यथा आप पर किसी भारी आपत्ति के आने की सम्भावना है।"

मैंने मुसकराते हुये कहा "भाई प्रेम प्रकाश ! कई मास में तो तुम्हारे दर्शन हुये फिर भी अपने साथ चिन्ता ही बांध कर लाये ! बहुत दिनों के पश्चात् आज मुझे छायावादियों की छाया, माया का आनन्द लेने का अवसर मिला था परन्तु वह भी इस समय ध्यान हट जाने से अब प्राप्त न होगा। पपीहे की पीड़ा में कवि ने किस प्रकार अपने हृदयगत भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है, इसका वर्णन करना तो मेरी शक्ति से बाहर है। कवि की विश्व वेदना में तो मानों सूर्य, चन्द्र, आकाश, पाताल सभी में वेदना ही वेदना भरी पड़ी है। मनुष्य सुख स्वप्नों की कल सृष्टि में विहार करता है परन्तु उनकी विस्मृति भी तुरन्त हो ही जाती है। प्रेम प्रकाश ! आपको वर्तमान छायावादियों में सब से अधिक कौन प्यारा लगता है ?"

इस प्रश्न के पूछते ही तुरन्त मेरा ध्यान वर्तमान स्त्री कवियों की ओर भी गया। मैंने सोचा कि उनको ओर संकेत न करना भी मेरी भारी धृष्टता है। एक नहीं दो नहीं दर्जनों ऐसी देवियां विद्यमान हैं जो पुरुषों से आगे बढ़ कर छायावादियों की माया में किसी भी साहित्य प्रेमी को फंसा देती हैं। परन्तु मुझे इस प्रश्न के पूछने का अवसर भी न मिलने पाया था कि सहसा सामने से एक भरी हुई लारी मेरे निवास स्थान के सामने आकर खड़ी हो गई। पूरे एक दर्जन पुलिस कर्मचारी बात की बात में पंक्ति बना कर खड़े हो गये। उनके साथ पुलिस के उच्च कर्मचारी भी थे। मैं तुरन्त अपने कार्यालय से अपने निवास स्थान पर पहुँचा। लगातार तीन घंटे तक मेरे समस्त कागज पत्र उलट पलटकर देखे गये परन्तु वहां कोई भी आपत्तिजनक वस्तु न थी। हो भी किस प्रकार सकती थी। मैं पूरे सोलहों आना सरकार प्रिय समझा जाता था। मैंने कई बड़े बड़े कामों में सरकार की सहायता की थी। अवसर पड़ने पर कई बार असहयोग आन्दोलन को दबाने के लिये चन्दा भी दिया था। परन्तु इस पर भी लाल दुपट्टे वाले मुझे सदैव सशङ्क दृष्टि से ही देखते थे।

पुलिस कर्मचारी खाली हाथ लौट गये। प्रेम प्रकाश न जाने किन किन विघ्न बाधाओं का चित्र खींचने में संलग्न हो गया परन्तु मैं लेशमात्र भी चिन्तित न था। चिन्ता की कोई बात भी न थी। हम दोनों व्यक्ति घर वालों को सान्त्वना देकर टहलने चले गये।

(२)

दूसरे दिन मोटे मोटे अक्षरों में समाचार पत्रों में छपा हुआ था 'ट्रेन में राजनैतिक डकैती' शीर्षक के नीचे और भी बहुत सी

बातें थीं परन्तु उन सब में डर की बात थी रमाकान्त का पकड़ा जाना और उसके पास से बन्दूक व कारतूस का निकलना। मेरे हृदय पर भारी वज्र पड़ गया। समाचार पत्र हाथ से छूट गया। मैं कुछ क्षण के लिये न जाने किस लोक में चला गया। तुरन्त ही मेरी पत्नि ने कमरे में प्रवेश किया और मधुर शब्दों में मुझे दूध का गिलास देते हुये पीने के लिये कहा। मैंने तबियत अच्छी न होने का बहाना करते हुये दूध लौटा दिया। परन्तु उसकी संतुष्टि न हुई। उसने मीठी वाणी में पूछाः —

आप आज उदास क्यों हैं। क्या ज्वर हो गया? अभी अभी तो आप स्वयं दूध मंगा रहे थे इतनी ही देर में क्या हो गया?"

"कमला! रमाकान्त को तो तुम जानती ही हो?

"हां भली प्रकार जानती हूँ। हमारे यहां तो वे कई बार आये हैं। फिर उन्हें किस प्रकार भूल सकती हूँ? उनका क्या हुआ?"

"कमला! आज पत्र में छपा है कि वह राजनैतिक डकैती में पकड़े गये?"

"डाके में? डाके से उनका क्या काम?"

"यह कुछ न पूछो?"

"आखिर उन्हें डाके से क्या प्रयोजन! वह तो पराई वस्तु को ठीकरे के समान समझने वाले व्यक्तियों में से हैं?"

"कमला! इतना ही नहीं किन्तु उसके पास से बंदूक व कारतूस भी पुलिस वालों ने बरामद किये हैं।"

कमला ने पुलिस वालों को बहुत सी जली कटी बातें सुनाईं। परन्तु उनसे होता ही क्या था? स्त्री स्वभाव के अनुसार वह आश्चर्य

करती हुई घर में चली गई। मेरा भी मन कमरे में न लगा और तुरन्त समाचार पत्र उठाकर प्रेमप्रकाश के घर की ओर चल दिया। दस बीस गज़ की दूरी ही समाप्त कर पाया था कि सामने से प्रेम प्रकाश आता हुआ दिखाई पड़ा। मुझसे भी पहिले उसे रमाकान्त और उसके कई मित्रों की गिरफ्तारी का समाचार मिल चुका था। हम दोनों के हृदयों में भांति भांति के संकल्प विकल्प उठ रहे थे। अपने यहां पहिले दिन तलाशी लिया जाना भी मैं इसी का कारण समझने लगा। सब से अधिक चिन्ता मुझे इस बात की थी कि इस ट्रेन डकैती में पुलिस के दो व्यक्ति भी मारे गये हैं। मैं जानता था कि इस प्रकार डाके के साथ किसी भी व्यक्ति का मारा जाना एक भारी खतरे का सूचक है। इस चिन्ता की अवस्था में मैंने सारा दिन प्रेमप्रकाश के साथ ही बिताया और उस दिन मैं अपने काम पर भी न गया।

(३)

रमाकान्त एक निर्धन ब्राह्मण का पुत्र था। परन्तु उसके भाग्य में पिता द्वारा लालन पालन किये जाने का सुख न बदा था। केवल चार वर्ष की ही अवस्था होगी जब पांडे कृष्णकांत उसे छोड़ कर परलोक सिधार गये। दुखिया मां ने उसे स्नेह से, प्रेम से छाती से लगाया और उसे मिनट, घंटे और दिन बिता बिताकर बड़ा किया।

रमाकान्त सदैव मां की आज्ञा पालन करना अपना धर्म समझता और मां की आंखों के संकेत पर काम करता था। मां भी पुत्र के लालन पालन की बड़ी चिन्ता रखती। यदि घड़ी दो घड़ी उसको स्कूल से घर आने में देर लग जाती तो वह घर के द्वार पर बैठी २ प्रतीक्षा करती। जिस समय तक रमाकान्त घर न आ लेता था उस

समय तक वह घर का कोई काम भी न कर पाती थी। व्याकुल होकर आने जाने वाले मुहल्ले के बालकों से पूछती—'रमाकान्त कहां गया'? जब रमाकान्त घर आ जाता तभी उसकी जान में जान आती।

रमाकान्त को कई बार ऐसा अवसर मिला जब उसने बूढ़ी मां को नमक से सूखी रोटियां खाते हुये देखा। कभी कभी तो वह मकई का दलिया बनाकर और उसे खाकर अपना पेट भर लेती थी परन्तु रमाकान्त को दरिद्रता का आभास नहीं होने देती थी।

रमाकान्त ने भी मन लगाकर विद्याध्ययन किया। मां ने परिश्रम करके अपना गुज़ारा करते हुये भी इंट्रेन्स की परीक्षा पास करादी। रमाकान्त अपने ज़िले के समस्त स्कूलों में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

वृद्धा मां की अब केवल एक ही इच्छा थी कि रमाकान्त का विवाह हो जाय और उसके आंगन में गृह लक्ष्मी का प्रवेश हो। परन्तु रमाकान्त विवाह करने के लिये सहमत न था। उसके विचार इस सम्बन्ध में माता से न मिलते थे इस कारण इस प्रसंग के उठते ही वह चुप हो जाता था।

प्रयत्न करने पर रमाकान्त को एक साधारण सी नौकरी मिल गई। गृहस्थी चलने का साधन बन जाने पर रमाकान्त ने मां की इच्छा में अधिक बाधा न दी। बूढ़ी मां पुत्रवधु को देखकर फूली न समाई।

(४)

तीन वर्ष तक रमाकान्त तथा उसके साथियों पर अभियोग चलता रहा। सैशन जज महोदय ने सभी अभियुक्तों को कड़ी कड़ी

सज़ायें दीं। रमाकान्त और उसके दो अन्य साथियों को मृत्यु दण्ड का हुक्म सुनाया गया।

हाईकोर्ट ने भी दो वर्ष इस अभियोग को निश्चय करने में लगा दिये। वहां भी कानून के पञ्जे से रमाकान्त मुक्त न हो सका। सरकार की ओर से भारत के कई प्रसिद्ध सरकारी बैरिस्टरों ने पैरवी की। अभियुक्तों के क़ानूनी सलाहकारों ने भी उन्हें मुक्त कराने में क़ानून की कोई धारा बिना छान बीन किये न छोड़ी परन्तु दमन-चक्र से वह बच न सके।

रमाकान्त फांसी की कोठरी में प्रसन्न था। रुखा, सूखा भोजन खाकर जिसने अपना बाल्यकाल बिताया हो उसे फिर जेल की रोटियों से क्या भय था? हां उसके मन में केवल एक कसक थी। वह अपनी पत्नि शान्तिदेवी के भविष्य को स्मरण करके व्याकुल हो उठता था। वह जानता था कि उसने दाम्पत्य सुख का कुछ भी अनुभव नहीं किया है। वह यह भी सोचता था कि वृद्धा मां ने उसकी बात न मानकर शीघ्रता में विवाह कर दिया। परन्तु इन आपत्तियों की उसे उस समय सम्भावना ही कब थी?

रमाकान्त को अब तक जितने पत्र उसकी पत्नी की ओर से जेल में प्राप्त हुये उन सब पर हृदय से निकले अश्रु-बिन्दु टपकने के चिन्ह विद्यमान थे। पत्रों पर अङ्कित वह मूक-वेदना उसकी पत्नि का वास्तविक प्रतिबिम्ब उसके सन्मुख उपस्थित कर देती थी। उस अन्धेरी कोठरी में उन बिन्दुओं का अनुमान लगाने वाला रमाकान्त, उत्तर में सान्त्वना भरे शब्द लिखता परन्तु वह भी अपने आपको मां

के चरणों में प्रणाम लिखते समय न संभाल सकता था। अधीर होकर मां के चरणों में दो अश्रु समर्पित कर ही देता था।

मुझे जो पत्र रमाकान्त ने लिखे मैं उनसे अनुमान लगाता था कि रमाकान्त निर्दोष होते हुये भी फांसी के तख्ते पर चढ़ने के लिये का-पुरुषों की नाईं भयभीत नहीं है।

मैं यह भली प्रकार जानता था कि किसी को मारना तो क्या रमाकान्त किसी की ओर उंगली भी न उठाता था। हां! केवल एक बात कही जा सकती है कि उसके यहां अनेकों कालिज विद्यार्थी आते जाते थे। उसका परिचय भी बाहर के बहुत से विद्यार्थियों से था। कई बंगाली विद्यार्थी तो उसके पास घन्टों आकर इधर उधर की बातें करते थे। यही कारण था कि उसके पकड़े जाने से छः मास पूर्व से पुलिस वाले उसकी सतर्क होकर निगरानी कर रहे थे।

मैं रमाकान्त के पकड़े जाने पर समझा कि उसे सरकारी आफिस में स्थान रिक्त होने पर भी नौकर क्यों नहीं रखा गया था। इतना ही नहीं किन्तु कभी कभी तो रात को भी सफेद वस्त्र पहिने पुलिस कर्मचारी रमाकान्त के घर के सामने चक्कर काटा करते थे।

(५)

शोक सन्ताप की प्रबल लहरों में बहने वाली रमाकान्त की मां को केवल शान्ति ही धैर्य प्रदान करती। परन्तु उसे संसार में कहीं भी तिनके का सहारा तक दिखाई न पड़ता था। इस समय तक बुढ़िया ने दुःख पर दुःख ही उठाये थे। जिसे छाती से लगाकर पाल पोस कर बड़ा किया था वह भी उसके हाथों से दुर्दैव ने छीन लिया। मैं जब कभी रमाकान्त के घर जाता मुझे देखते ही बुढ़िया फूट २ कर रोने

लगती । उसके वेदना-पूर्ण शब्द मुझे विह्वल कर देते । करुणाजनक वाणी पाषाण हृदय को भी पिघलाने वाली थी । मां की अन्तर्वेदना का मूल्य लगाना मेरे लिये कठिन था । वह यही कहती थीं "मेरा हाथी सा लाल मेरे हाथों से छिन गया ।" यह कहते २ वृद्धा बेसुध हो जाती थी ।

परन्तु इस कुटिलता पूर्ण संसार में दीनों की आह का मूल्य लगाने वाला कौन है ? शब्दों को सहानुभूति के अतिरिक्त मैंने उनकी लेशमात्र भी कोई सहायता न की थी । जिनके हृदय में शोक की प्रचण्ड अग्नि धधक रही हो उनके लिये केवल मीठे शब्द क्या सान्त्वना दे सकते थे ?

शान्ति उस वृद्धा का सहारा थी । सास को प्रसन्न रखने के लिये वह अपनी हृदय-गत वेदना को प्रगट न होने देती थी । दिन भर घर का काम काज करती थी । आटा पीसना, चर्खा कातना ये दोनों काम उसका सारा दिन बिता देते थे । यद्यपि उसके माता पिता ने कई बार प्रयत्न किया कि वह उनके पास ही रहे परन्तु उसने ऐसा करना उचित न समझा । कठिनाइयों, विपत्तियों में वृद्धा सास को छोड़कर पिता के यहां चले जाना यह अपने पति के प्रति अन्याय करना समझती थी ?

शान्ति को पढ़ने लिखने का अच्छा अभ्यास था । अपनी वृद्धा सास को प्रायः रामायण सुनाती । यद्यपि वृद्धा को कोई बात अच्छी न लगती थी परन्तु बहू का मन रखने के लिये वह भी कह देती 'बहू पहिले आदमियों पर भी बड़ी २ विपदा पड़ गई हैं ?"

वृद्धा ने अपने पति की सञ्चित कुल सम्पत्ति अपने पुत्र को मुक्त

कराने में लगा दी। अपना मकान भी गिरवी रख दिया। हाथों के चांदी के कड़े भी बेच दिये। शान्ति ने भी अपने पति की कानूनी सहायता के निमित्त अपने आभूषण सहर्ष वृद्धा सास को उतार कर दे दिये। परन्तु फिर भी वे रमाकान्त को मुक्त कराने में सफल न हो सकीं।

रमाकान्त की मां जानती थी कि उसका पुत्र मृत्यु के मुख में डाल दिया गया है। फिर भी विधाता की ओर उसके नेत्र लगे हुये थे ? अन्तिम स्वांस के समय में भी मनुष्य जीवित हो उठने की सदैव आशा रखता है। वही दशा उसकी भी थी। वह भी यही आश लगाये बैठी थी न जाने कौन से कानून की कृपा से उसका प्यारा पुत्र उसे मिल जायगा।

(६)

चौथी अप्रैल को प्रातः चार बजे रमाकान्त ने उठकर स्नान किया। यह दिन उसको फांसी दिये जाने का था। सरकार की ओर से पहिले दिन से ही अपराधी को सब प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक वस्तु के लिये उससे पूछा जाता है, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। रमाकान्त बड़ा प्रसन्न था। वह जानता था कि मृत्यु समय कायरता भय और शंका के भाव लाने से आत्मा को कष्ट पहुँचता है। वह साहसी था, वीर था, परन्तु परदुख को भी अनुभव करने वाला था। अपनी धर्मपत्नि शान्ति के लिये उसके हृदय में मर्म था, वेदना थी। वह डाकू था या क़ातिल, अपराधी था या निरापराधी, सरकार का शत्रु था या मित्र इन बातों के विचार का यह समय नहीं।

रमाकान्त के महाप्रयाण का समय निकट आता जा रहा था। पुरानी विस्मृत बातें चल चित्र की भांति फिर उसकी आंखों के सामने आ रही थीं। उसे अपने स्कूल के दिन याद आये। असहयोग आन्दोलन में उसके एक अध्यापक जेल गये थे। दो तीन अध्यापकों ने जेल से बाहर रहकर भी देश के लिये काम किया था। रमाकान्त उन्हें श्रद्धा से स्मरण कर रहा था।

रमाकान्त ने अपने अंतिम क्षण में कुछ पंक्तियां अपनी पत्नि के लिये लिखीं जिनमें प्रगट किया कि "शान्ति! आज कुछ क्षण बाद फांसीघर में मेरा पार्थिव शरीर पड़ा होगा परन्तु मेरी आत्मा देश के उत्थान के लिये कहीं अन्यत्र व्याकुल होगी। तुम मेरी फांसी से दुखी न होना। न जाने ऐसे कितने फांसीघरों में मेरे जैसे युवक कर्तव्य पालन के झूले पर झूल चुके हैं।"

स्वा
त
न्त्र्य
यज्ञ में आहुति

१

वीर जवाहर उस दिन दोपहरी के ठीक डेढ़ बजे एक बहुत छोटे से जोहड़ के बीच में खड़े हुए कुछ विचार कर रहे थे। उनके बायें हाथ की दो अंगुलियां उनके गाल पर थीं और अंगूठा ठोडी के नीचे। उस जोहड़ में एक किनारे पर गढ़े में थोड़ा सा पानी शेष था; बाक़ी सब सूखा पड़ा था। ग़रीब लोगों ने उस जोहड़ के एक किनारे को काट काट कर काफ़ी मिट्टी निकाल ली थी। दूसरे किनारे पर सरसों का एक खेत लहरा रहा था। सरसों फूलनी प्रारम्भ हो गई थी, परन्तु कहीं कहीं ही पीतवर्ण के छोटे छोटे फूल दिखाई पड़ते थे; क्योंकि अभी बसन्त के आने में काफ़ी दिन शेष थे।

जोहड़ के उत्तरी भाग में छोटी छोटी छः तिरंगी झण्डियां लगी हुई थीं और पूरब की ओर एक बड़ा तिरंगा झण्डा लहरा रहा था। तीन फुट लम्बा और दो फुट चौड़ा स्थान जवाहर लाल के कौतूहल का कारण बना हुआ था।

एक साथी ने जवाहरलाल जी को बताया "पुलिस ने उस देश-

भक्त की लाश को चुपके से लाकर इसी स्थान पर गाड़ दिया था। और इस बात की खबर किसी को भी न होने दी थी। लाश कई दिन तक गड़ी रही परन्तु हमारे कार्यकर्ताओं ने भी पूरी देखभाल रक्खी। दूसरी तरफ़ ज़िला मजिस्ट्रेट को इत्तला भी दी कि लाश अमुक स्थान पर गाड़ी गई है, वह हमें दिलाई जाय।"

पण्डित जी गम्भीर मुद्रा से यह सब सुनते रहे। उनको यह भी बताया गया "पुलिस ने पांच व्यक्तियों को गोली का निशाना बनाकर घटनास्थल पर ही मार दिया था, परन्तु सूचना केवल चार के मरने की दी थी। वैसे और भी कई व्यक्तियों को गोली लगी थीं। पुलिस ने लाश को निकाल कर दूसरी जगह गड़वा दिया परन्तु फिर भी पता चलाया गया और बाद को वह लाश प्राप्त करके जलाई गई।"

उन दिनों लाश का प्राप्त करना और उसे जलाने की व्यवस्था करना नर-पिशाच हत्यारों की आंख का शूल बनना था। मुकदमा कुछ भी न बनता हो, धारा १२९ में जेल में ठूंस देना तो उनके लिए साधारण बात थी।

जवाहरलाल ने उस वीर सैनिक की स्मृति में कुछ क्षण श्रद्धांजलि भेंट की और वहां से धीमे पग लौटे।

२

गांधी आश्रम के कार्यकर्ता १९४२ के आन्दोलन की तैयारी में सब प्रकार का सक्रिय भाग ले रहे थे। उन दिनों उनकी शक्ति केवल खादी तक ही सीमित नहीं रह गई थी। इसका कारण था देश की मांग। १९४२ का अगस्त मास भयङ्कर प्रलय के साथ परतन्त्रा की

बेड़ियों को तोड़ रहा था। प्रत्येक स्वाभिमानी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए कुछ न कुछ आहुति देने के लिए समुत्सुक था। मेरठ के प्रत्येक ग्राम और नगर में कई दिन से स्वातन्त्र्य युद्ध की चिंगारियां धधक रही थीं। स्थान २ पर यही चर्चा थी कि बम्बई में कांग्रेस के समस्त बड़े बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये।

ज़िले के अधिकारी शासन को चलाने के लिए प्रत्येक प्रकार का बल प्रयोग कर रहे थे। दूसरी ओर स्वदेशाभिमानियों के हृदय में शक्तिशाली साम्राज्यशाही को मिटाने की चाह लहरें मार रही थीं।

पुलिस को जहां भी पता चलता था वह हर प्रकार की सभाओं को बलपूर्वक रोकने का यत्न करती थी, परन्तु आंधी और तूफ़ान की भांति आगे बढ़ने वाले साहसी वीर कहीं २ अनेकों पाबन्दियों के होते हुए भी अपनी सभाएं कर रहे थे और सोच रहे थे कि उन्हें कौन से कर्तव्य का पालन करना है।

स्वदेश-प्रेमी, मातृभूमि का दुलारा वीर रामस्वरूप ग्राम भम्भौरी की एक सार्वजनिक सभा में सम्मिलित था। ग्राम की एक चौपाल पर यह सभा हो रही थी। अनेकों माताएं आस पास के कोठों पर बैठी हुई सभा का दृश्य देख रही थीं। अनेको ग्रामीण बालाएं आस पास में खड़ी हुई थीं। प्रकृति के अनुसार अनेकों छोटे छोटे बच्चे सभास्थल में विद्यमान थे। चौपाल और उसके चारों तरफ़ का स्थान और सारा गलिहारा जनता से भरा हुआ था। इस सभा में केवल गांव के ही व्यक्ति सम्मिलित न थे किन्तु आस पास के ग्रामों के हज़ारों भाई आये हुए थे। एक वृक्ष पर तिरंगा झण्डा लहरा रहा था। इसके अतिरिक्त और भी कई झण्डे सभास्थल में फहरा रहे थे।

देश की स्वतन्त्रता को देखने वाला एक युवक कह रहा था—गांधी जी ने कह दिया है कि आज वह समय है जब प्रत्येक हिन्दुस्तानी 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा लेकर अपने देश को गुलामी से छुड़ाले।

इसी बीच कुछ आवाज़ आई। ऐसा प्रतीत होने लगा कि सभा-स्थल के पास में कोई मोटर आकर रुकी है। जनता सावधान थी। बात की बात में पचास से अधिक फ़ौजी व सिपाही वहां आ पहुँचे। बन्दूकें तनी हुई थीं और उनका दिमाग़ बिगड़ा हुआ था। आपे से बाहर से नक सब कुछ करने के लिए उतावले थे। परिणाम यही था कि वहां भीषण गोलीकाण्ड हुआ।

एक देश-द्रोही, गुलाम, नर पिशाच ने हाथ का संकेत करते हुए कहा—"यह सामने वाला ही सब कुछ है और इसी ने यह तूफ़ान खड़ा किया हुआ है।"

इतने ही शब्द काफ़ी थे। नरपिशाच शिकारी ने तुरन्त राम स्वरूप को गोली का शिकार बना दिया।

धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं। कितने ही व्यक्तियों को पकड़ कर सरधने के थाने की हवालात में बन्द कर दिया गया। न जाने पुलिस ने किस कारण वीर रामस्वरूप की लाश को वहां से उठाकर किसी अज्ञात स्थान में गाड़ दिया।

३

गांधी आश्रम के कार्यकर्ताओं को अपने वीर कार्यकर्ता के गोली से मारे जाने का समाचार ज्योंही मिला वे उसकी लाश को प्राप्त करने के लिये व्याकुल हो उठे। विचित्र बात यह थी कि उच्च अधि-

कारियों को वीर रामस्वरूप के मारे जाने का समाचार भी न दिया गया था। लाश को तालाब के पास से खोज करके प्राप्त किया गया, परन्तु पुलिस ने फिर उसे ले लिया और उसे गाड़ कर पहरा लगा दिया। परन्तु उस पहरे में से भी लाश प्राप्त की गई।

माताओं ने अपने पुत्रों को, बहिनों ने अपने भाइयों को और महिलाओं ने अपने पतियों को स्वातन्त्र्य-रण संग्राम के लिये बिदा दी। अनेकों वीर नौकरशाही की जेलों में डाल दिये गये। इतना ही नहीं हज़ारों रुपये उनके परिवार वालों से जुर्माने के रूप में प्राप्त किये गये।

४

जवाहर ज़िले का दौरा कर रहे थे। गांव से बाहर मोटर रोकी और पैदल सभास्थल की ओर झपटे। स्थान कुछ दूर था। समय के बचाने के लिये वे लम्बे पग रख रहे थे। उन्होंने उस गोली काण्ड के स्थान को पार किया। मातायें जवाहर को देखकर प्रसन्न थीं। कच्चे मकानों की छतों पर खड़े होकर उन्होंने पुष्प और धान की खील बरसाकर अपने प्रेम का परिचय दिया। माताओं ने गोली से मरे पुत्रों की सुध भुला दी। बहिनों ने समझा कि दूसरा भाई मिला। बच्चे २ में उमंग थी, बूढ़ों में साहस था, युवकों में जोश।

जवाहर ने सन्देश दिया "ऐसे वीरों के रक्त से ही स्वतन्त्रता के भवन निर्माण होते हैं। अब वह समय निकट है जब आप अपने देश को आज़ाद देखेंगे।"

दुखिया की दिवाली

एक

"मां ! दो पैसे दे दो।"

"पैसा तो मेरे पास एक भी नहीं, बेटा !"

"जल्दी दो न, मां ! देखो कन्दील वाला चला जायगा, फिर।"

"बेटा ! कन्दील वाला और भी आयगा ! शाम को मैं तुझे कन्दील दिला दूंगी।"

"सभी तो अब ले रहे हैं। मैं भी कन्दील अभी लूंगा।"

"न, बेटा ! राजा बेटे ज़िद नहीं करते।"

चिरंजी मान गया। घर की चौखट पर से ही उसने कहा—"कन्दील वाले; मैं राजा बेटा हूँ। शाम को कन्दील लूंगा। शाम को आना; अच्छा, समझे।"

वह अपनी बात पूरी कर भी न पाया था, मुहल्ले के लड़के

खिलखिलाकर हंस पड़े। दो तीन लड़के कहने लगे—"देखो तो, पागल चण्डी का लड़का राजा बेटा बनता है।"

चिरंजी का ध्यान उधर नहीं था। उसने सुना नहीं। पर मां का हृदय उद्विग्न हो उठा। दरिद्रता का रौद्र रूप उसके नेत्रों में चक्कर काटने लगा। बच्चे की हठ ने मां को विचलित कर दिया। हाथ में पैसा न होते हुए मां बच्चे की हठ पूर्ण ही कैसे कर सकती थी। बच्चे के देखते ही देखते क़न्दील वाला आगे बढ़ गया। बच्चा मचला, रोया और मां को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार अपने नन्हे नन्हे हाथों से पीटने लगा। इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकता था? सरस्वती ने अपने बच्चे को मनाया, फुसलाया और प्यार से दूसरी बातों में लगाया। इसी के साथ साथ अपने दुखिया भाग्य पर दो आंसू भी चुपके से टपका दिये। बच्चे ने देखा मां रो रही है। उसका भी मन भर आया। मां की गोद से उतर कर छोटा सा चिरंजी अपनी बहिन के साथ खेलने लगा। क़न्दील लेने की ओर अब उसका ध्यान न था।

दो

चण्डी प्रसाद एक साधारण से घर में उत्पन्न हुआ था। रहने का छोटा सा मकान था और गांव में थोड़ी सी ज़मीन जो बटाई पर बोई जाती थी। पिता म्युनिसिपैलिटी में चपरासी था। यह कहा जा सकता है कि साधारण खाता पीता घर। पर चण्डी का जन्म होते ही घर के विधाता वाम पड़ गये। चण्डी के पिता की नौकरी छूटी और परिवार पर संकट आने आरम्भ हो गये। ज्यों त्यों करके चण्डी बड़ा

हुआ और उसकी शादी होगई। शादी के बाद घर की अवस्था और भी बिगड़ गई। नगर में यह प्रसिद्ध हो गया था कि उसके पिता ने जिस समय से चण्डी का विवाह किया है उस समय से उनसे लक्ष्मी और भी अधिक रुष्ट हो गई है। बात यह थी कि विवाह के बाद चण्डी के पिता की सम्पत्ति तथा भूमि कौड़ियों के मोल पांच-सात वर्षों में ही सब लुट गई। अगले ही वर्ष चण्डी के पिता की मृत्यु हो गई। माता का सुख तो उसके भाग्य में बदा ही न था। चण्डी की मां केवल चार वर्ष की अवस्था में ही उसे छोड़ कर परलोक वास कर चुकी थी। पिता ने ही उसे पाला पोसा था।

घर में केवल दो प्राणी रह गये। चण्डी तथा उसकी पत्नी सरस्वती। चण्डी गरीबी का मारा हुआ था। लिखा पढ़ा कुछ भी न था। गृहस्थी चलाने का कोई दूसरा साधन भी उसके पास न था। सारा दिन इधर उधर घूम फिर कर चण्डी व्यतीत कर देता। कभी २ कोई उससे मज़दूरी करा कर दो चार आने दे देता तो वह लाकर सरस्वती के हाथ में रख देता। पर ऐसा रोज़ न होता था। कभी कभी वह खाली हाथ ही घर पर आकर पड़ रहता।

सरस्वती भी अत्यन्त गरीब पिता की बेटी थी। गरीब थी तो क्या? गृहस्थी धर्म को जानती थी। वह समझदार और साहसी देवी थी। अपनी गरीबी को अपने किन्हीं पूर्व कर्मों का अभिशाप समझते हुए उसने दृढ़ता के साथ जीवन की गाड़ी को चलाने का निश्चय किया। वह चर्खा चलाती और पिसाई पर आटा पीस देती। इसी से वह अपनी गृहस्थी को रूखी सूखी रोटी देने में सफल हो सकी।

चण्डी की ग़रीबी ने उसे पागल सा बना दिया। नगर के बच्चे और बड़े सब उसे परेशान करते। कभी कभी बच्चे उसके पीछे पड़ जाते और ढेले उठाकर उसकी ओर फेंकते। पर वह इतना पागल न था। कभी भी जवाब में वह ढेला नहीं फेंकता था। पर जब ऐसा होता तो उसकी आत्मा मसोस उठती। फिर उससे मज़दूरी की तलाश भी न हो पाती। इसी तरह चण्डी की छोटी सी गृहस्थी चल रही थी। तीन चार वर्ष की इसी प्रकार की अत्यन्त ग़रीबी की अवस्था में ही चण्डी के दो सन्तानें उत्पन्न हो चुकी थीं, जिनका भार उसके दुर्बल कन्धों पर और पड़ गया था।

सरस्वती यद्यपि इन बच्चों को पाने के लिये विशेष उत्सुक नहीं थी। पर दुर्भाग्य का एक और आघात समझकर उसने सन्तोष पूर्वक इनका लालन पालन आरम्भ किया। चण्डी कुछ भी नहीं करता था, पर वह अपने पति के प्रति कभी क्रोध न करती। मौहल्ले के बच्चे जब चण्डी को पागल पागल पुकारते तो उसके हृदय में आघात पहुँचता। परन्तु मोहल्ले वालों से लड़कर वह अपनी ग़रीबी को और बढ़ाना चढ़ाना अच्छा नहीं समझती थी। वह चुप हो जाती और दो आंसू टपका लेती। आज जब चिरंजी को मुहल्ले के बालकों ने 'पागल चण्डी का बेटा' कहा तो भी वही दो आंसू सरस्वती की आँखों में आकर रह गये।

तीन

बच्चे आपस के लड़ाई झगड़े को ज़्यादा देर याद नहीं रखते। वह ऐसा करने लगें तो यह पृथ्वी नरक बन जाय। अभी जिस सरल:

ने चिरंजी को 'पागल चण्डी का बेटा' कहा था वही जब उसे बुलाने आई तो चिरंजी उसके घर का क़न्दील देखने चला गया।

बड़ा सा क़न्दील था, नीले, लाल और चमकदार कागज़ उसमें लगे हुए थे। पर ......पर ...चिरंजी ने कहा, सरला ! तुमसे तो सतीश का क़न्दील अच्छा है। सरला अपने सामने दूसरे की बड़ाई कैसे सुनती। तुनक कर बोली, "आया बड़ा खराब बताने वाला। अपने घर में एक दिया भी नहीं। मेरे क़न्दील को खराब बताने चला है।"

मर्माहत चिरंजी घर लौट आया। मचल पड़ा और मां से ज़िद करने लगा, क़न्दील और दिये दोनों लेने की। इस बार बहलाने से वह न मानेगा। पहली बार दूसरे बच्चों के देखा देखी क़न्दील मांग रहा था, इस बार तो उसे क़न्दील न होने के लिये अपमानित होना पड़ा है ! कैसे वह मान जाय ! इसी समय क़न्दील वाला आया और चिरंजी ने उसे अपने द्वार के सामने ठहरा लिया। सरस्वती दरिद्र थी पर अपनी दरिद्रता का आभास भी नहीं होने देना चाहती थी और न अपने बच्चे की उमंगें समाप्त करना। अभी कुछ देर पहले उसके हाथ में पैसे आ गये थे ! एक पैसे वाला छोटा सा क़न्दील चिरंजी को दिला दिया। बच्चा क़न्दील लेकर फूला न समाया। डोरी बांधकर उसने अपने टूटे फूटे मकान के छज्जे पर उसे लटका दिया।

मां उस सूत कतवाने वाले व्यक्ति को अनेकों आशीर्वाद दे रही थी जिसने आज दिवाली के दिन स्वयं उसके घर आकर उसकी कताई का हिसाब कर दिया था। हिसाब से आठ आने होते थे परन्तु एक पैसा अधिक देकर उसने सवा आठ आने दे दिये थे। तांबा और चांदी दोनों का संयोग कर दिया था।

सरस्वती ने सोचा—कैसा अच्छा भाग्य है मेरा! बरस भर का त्योहार खाली जा रहा था। अब दो चार पैसे के खील बताशे लेकर लक्ष्मी पूजन करूंगी। त्योहार के दिन बच्चों को लेकर अपने आंगन में बैठ जाऊंगी। दो चार पैसे खर्च करके इधर उधर घर में दीपक भी जलाऊंगी। कुएं पर भी तो एक दीपक रखा जाना चाहिये, और एक दीपक मन्दिर में भी। पांच छः आने में दिवाली का उत्सव मनाकर उसने आठ आने में से दो आने बचा लेने की बात सोची थी।

इसी समय कुम्हारी दिये लिये हुए आ पहुँची। सरस्वती ने दो पैसे के दीपक मोल लिये। पैसे देने के लिये अपनी धोती का पल्ला खोला। देखते ही सन्न रह गई। अठन्नी के स्थान में केवल एक पैसा ही उसमें बंधा हुआ था। सरस्वती का सारा उत्साह एक क्षण में ही विलीन हो गया। आंखों के आगे अंधेरा सा छा गया। पर दूसरे ही क्षण उसने अपने आपको सम्भाल लिया और केवल एक पैसे के ही दीपक रखकर शेष दिये कुम्हारी के टोकरे में रख दिये।

दुखिया सरस्वती के दुःख का पारावार न रहा। तेल बिना दीपक किस प्रकार जलाती। उसके भाग्य की दीपमालिका में प्रकाश का आभास भी न रहा। घोर अंधकार चारों ओर से मुंह फाड़कर आगे बढ़ने लगा। हताश होकर सरस्वती व्यथित मन अपने छोटे बच्चों को पास बिठाकर उनको प्रसन्न करने के लिये आंगन में कहानी कहने बैठ गई।

आज यह कोई नई बात न थी। इससे पहले कई बार इसी तरह से अपने बच्चों को बहलाने के लिये नरसी भगत की कहानी

सुनाई थी। इससे पहले कई बार इसी तरह उसने बिना प्रकाश तथा बिना अन्न के ही अपने कष्टमय जीवन की घड़ियां बिता दी थीं। इससे पहले कई बार इसी तरह उसने अपने हृदय की मर्म व्यथा को कहानियों के साधन से स्वयं भी भूल जाने का यत्न किया था।

सरस्वती उस समय गहरी सहानुभूति की अधिकारिणी बन रही थी। परन्तु उसकी वेदना को, उसके घोर दुःख को अनुभव करने वाला कोई न था। हां, ऐसे अवसर पर केवल एक परमात्मा के सहारे की बात रह जाती है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर होता है। सरस्वती के नेत्रों में गर्म गर्म आंसुओं की बूंदें चक्कर लगा रही थीं। दैन्य और दारिद्रय की मूर्ति को अवलोकन करके वह भयभीत थी परन्तु उसकी दो सन्तानें ही एकमात्र आशा के टिमटिमाते दीपक के तुल्य थीं।

भला ऐसी कौन सी मां होगी जो अपनी संतान की साधारण आवश्यकताओं को पूर्ण न कर पाते समय क्षुब्ध न हो जाती हो? मां का कोमल हृदय अपनी सन्तान को छोटी सी खाने की वस्तु मांगते देख कर ही अपनी असमर्थता पर पीड़ित हो उठता है। यही दशा इस समय सरस्वती की थी। बच्चों को बरस भर के त्योहार के दिन इस प्रकार दुखित देखना उसके लिये असह्य हो रहा था।

चार

नगर में जुआ ज़ोरों के साथ चल रहा था। जिस गली अथवा मुहल्ले में जाओ उधर ही जुआरियों की पंचायत एकत्रित थी। अधिकारियों की ओर से खुली आज्ञा मिल गई थी। कोई उसके परिणाम को देखने या सुनने वाला न था।

हम नहीं कह सकते कि कितने व्यक्तियों के भाग्य उस दिन जागे होंगे और कितने व्यक्तियों के परिवार जुए की हार से सर्वनाश को प्राप्त हुये होंगे सेठ साहूकारों ने सौ सौ रुपये में जुआरियों के आभूषण अपने यहां गिरवी रखकर बीस पच्चीस रुपये देकर ही छुटकारा पा लिया।

ला० गोविन्दराम भी उन्हीं में से एक थे जिन्होंने अपनी पत्नि को पीटकर उसके समस्त आभूषण जुए की भेंट चढ़ाने के लिये प्राप्त कर लिये थे। चण्डी को गोविन्दराम बड़ा स्नेह करता था। चण्डी उसके लिये एक प्रकार से भगवान का दूत था। उसका विश्वास था कि चण्डी पागल होते हुये भी जो कुछ बता देगा वह सही उतरेगा। दो घंटे के खेल में गोबिन्दराम ने मन चाहा रुपया जीत लिया। वह सहर्ष वहां से उठकर लक्ष्मी पूजन के लिये घर की ओर चल दिया।

गोविन्दराम ने नगर की प्रथा के अनुसार दीपमालिका के अवसर पर कई रुपये का प्रसाद बांट दिया। प्रसाद बांटते समय उसे चण्डी भी मिल गया। दोनों हाथों में मिठाई भर कर उसने चण्डी को दी। चण्डी मुसकराया और मिठाई लेकर घर चला आया।

पांच

आज यह प्रथम अवसर था कि चण्डी ने चिरंजी को प्रेम से गोद में उठाया। चण्डी ने गोबिन्दराम की दी हुई सारी मिठाई उसकी गोद में रख दी। मिठाई लेकर बालक हंसता हुआ अपनी माता के पास दौड़ गया।

सरस्वती को चिरंजी ने बार बार मिठाई दिखाई और हंसते हुए कहाः—

मां ! पिता जी मिठाई लाये हैं, क्या तू खायगी ?

'बेटा यहां ले आ इसमें से तेरी बहिन को भी दे दूं।'

'नहीं मां मैं नहीं दूंगा।'

'बेटा सभी बांटकर खाया करते हैं।'

सरस्वती ने पुचकार कर चिरंजी को गोद में बिठा लिया। चिरंजी ने सारी मिठाई मां के हाथों में रख दी। सरस्वती ने मिठाई को बड़े ध्यान से देखा। मिठाई में उसका भाग्योदय हो गया। उसे एक चमकती हुई वस्तु मिठाई में दिखाई पड़ी। सरस्वती ने अपने जीवन में ऐसी वस्तु कभी नहीं देखी थी। अपने पति चण्डी को दिखाते हुए पूछा "यह क्या है ?"

"सरस्वती ! यह तो गिन्नी है।"

"मिठाई में कहां से आ गई ?"

"मुझे ऐसा ख्याल पड़ता है कि गोविन्दराम ने मिठाई बांटते समय असावधानी की होगी। उसकी यह गिन्नी मिठाई में गिर गई होगी।"

"आप जाइये और उसको गिन्नी दे आइये।"

"सरस्वती गिन्नी लौटाने की कौन बात है ?"

"स्वामिन् ! अपना धन ही जब पास न रहा तो मैं दूसरे के धन को लेकर क्या करूंगी ?"

"पगली कहीं आई चीज़ लौटाई जाती है ?"

"नहीं तुम इसे तुरन्त लौटा आओ।"

चण्डी ने पत्नी का आग्रह मान लिया। वह दौड़ा हुआ गोबिन्द राम के पास पहुँचा। गिन्नी देते हुए उस से कहा "भाई लो ये तुम्हारी गिन्नी मिठाई में चली गई थी। मैं वापिस लाया हूँ।"

गोबिन्दराम ने प्रसन्नता से उसे दूसरी गिन्नी और देते हुए कहा "भाई चण्डी! मैं तुम्हारे कारण ही आज जीता हूँ। जाओ दोनों गिन्नी लेजाकर दीपमालिका मनाओ।"

सरस्वती को अब पूर्ण सन्तोष था। उसने पराई वस्तु को लौटा दिया था। मानो गोबिन्दराम ने पुरस्कार रूप में चण्डी को दो गिन्नियां देकर दुखिया की दीपमालिका मनवाई है।

चण्डी के घर में उस दिन से लक्ष्मी का पुनः प्रवेश हुआ। आज उसे कोई पागल नहीं कहता। वह आनन्द से अपनी गृहस्थी चलाता है।





एक

"चित्ररेखा ! मैं एक बड़े राज्य का स्वामी हूँ । क्या तू यह नहीं जानती ?" ग़ज़नी के अधिपति शाहबुद्दीन की रोष भरी आवाज़ चित्ररेखा के कानों में गूंज रही थी।

"जानती हूँ, महाराज ! आप ग़ज़नी के बादशाह हैं। परन्तु...."

"परन्तु क्या ? तुझे मेरी आज्ञा का पालन करना ही होगा।"

"बादशाह की आज्ञा का पालन किया जा सकता है, परन्तु उसी रूप में जिसमें कि वह मुझे यहां लाये हैं।"

"मेरा हुकम, हुकम है। तुझे मेरी इच्छा के अनुकूल चलना होगा।"

"बादशाह साहब ! ऐसा होना कठिन है।" निश्चय के स्वर में चित्ररेखा ने उत्तर दिया। अधिक कहने सुनने की आदी चित्ररेखा नहीं थी।

"चित्ररेखा ! याद रख मैं तुझे इतनी अन्धेरी कोठरी में बंद कराऊंगा कि जिसमें तुझे प्रकाश की रेखा भी दृष्टि न पड़े। उस गहरे अन्धकार में तू कठोर पीड़ा से व्याकुल होकर प्राण छोड़ेगी।

हां ! यदि तुझे मेरा प्रेम स्वीकार है तो मैं तुझे हर प्रकार का ऐशो-आराम पहुँचाऊंगा।" शाहबुद्दीन के स्वर में कोई ऐसी बात न थी जिससे चित्ररेखा अनुमान लगा सके कि शाहबुद्दीन वास्तव में उससे प्रेम करता है। शासन की बू स्पष्ट रूप से उसके स्वर से आ रही थी।

"बादशाह साहब ! आप मुझे अपनी बेगम बनाकर राज्य महल में रखने के लिये लाये थे, परन्तु अब अन्धेरी कोठरी में बन्द करने का स्वप्न देख रहे हैं। मैं उसे भी सहर्ष स्वीकार करती हूँ।" व्यंग्य भरे स्वर में चित्ररेखा ने उत्तर में कहा और फिर अपने भविष्य के सम्बन्ध में गम्भीर विचार में लीन होगई। शाहबुद्दीन क्रोधपूर्ण नेत्रों से बहुत देर तक उसकी ओर देखता रहा। अन्त में खिन्न मन होकर वह उस स्थान से उठकर अन्यत्र चला गया। चित्ररेखा अपने अतीत और भविष्य का सूत्र जोड़ने में लग गई।

दो

चित्ररेखा सौराष्ट्र देश की सुप्रसिद्ध नर्तकी थी। अंगों की गठन, मोती जैसी शरीर की कान्ति, बड़ी बड़ी आंखें सहज ही उसे परम सुन्दरी प्रगट करते थे और यह बात सत्य है कि उस समय चित्ररेखा के सौन्दर्य को सौराष्ट्र भर में कोई भी न पहुँच पाता था। उसके रूप गुण का प्रभुत्व समस्त राज्य में छाया हुआ था। सौराष्ट्र के राजा ने उसे राजमहल में वही मान दे रखा था जो उसकी रनवास की रानियों को प्राप्त था।

रूप और यौवन के बल पर स्त्री अपने सन्मुख बड़े बड़े शक्तिशाली राजाओं को भी नत-मस्तक करा लेती है। परन्तु वह उसी

समय तक जब तक कि उसके यौवन का रस-पान करने वाला भ्रमर मदोन्मत्त होकर उसके प्रेम में आत्मविभोर हो जाना साधारण बात समझता हो। किसी दिन सौराष्ट्र नरेश के चित्ररेखा के प्रति यही भाव थे। वह अपनी भावभंगियों के अनुसार सौराष्ट्र नरेश के प्रत्येक कार्य को संचालित करती थी। परन्तु समय के फेर से वही अब उनको नीरस प्रतीत होने लगी!

शाहबुद्दीन उन दिनों सौराष्ट्र आया हुआ था। चित्ररेखा के रूप, यौवन की प्रसिद्धि उसके कान में पड़ चुकी थी। सौराष्ट्र नरेश ने चित्ररेखा को शाहबुद्दीन की इच्छानुकूल संधि की शर्तों में रखकर उपहार में दे दिया।

शाहबुद्दीन चित्ररेखा पर इतना आसक्त हो चुका था कि वह संसार में उसके अतिरिक्त अन्य कोई परम प्रिय वस्तु ही न समझता था। शाहबुद्दीन चित्ररेखा को ग़ज़नी ले गया। उसने धारणा की थी कि वह चित्ररेखा को इस्लाम में दीक्षित करके उसे ग़ज़नी की महारानी बनायगा, परन्तु चित्ररेखा उसके इस विचार से तनिक भी सहमत न थी। ग़ज़नी पहुँच जाने पर भी चित्ररेखा के हृदय में शाहबुद्दीन के प्रति प्रेमाकर्षण न हुआ। शाहबुद्दीन इस कारण बड़ा खिन्न मन रहता था।

शाहबुद्दीन को यह पता नहीं था कि चित्ररेखा युवक मीर हुसैन के प्रणय-पाश में बंध चुकी है। चित्ररेखा और मीर हुसैन यह जानते हुए भी कि यदि शाहबुद्दीन को हमारे प्रेम-सम्बन्ध का पता लग गया तो संकट उत्पन्न हो जायगा आपस में मिलते और वार्तालाप करते। दुर्भाग्य से एक दिन शाहबुद्दीन पर यह भेद प्रगट हो गया।

तीन

"मीरहुसैन ! मैं जानता हूं कि तुम चित्ररेखा से गुप्त रूप में प्रेम करते हो। क्या तुम नहीं जानते कि इसका क्या परिणाम होगा ?"

"बादशाह साहब ! मैं जानता हूँ कि इसका नतीजा सिवाय मृत्यु के और कुछ नहीं होगा।"

"तो क्या तू मृत्यु से प्यार करता है।"

"बादशाह सलामत ! मृत्यु से तो मैं हर समय अठखेलियां किया करता हूँ।"

"मीर हुसैन ! ग़ज़नी के बादशाह के सामने इतना साहस ?"

"वीर पुरुष साहस ही की बातें किया करते हैं। बादशाह सलामत ! संसार में प्रेम ऐसी वस्तु नहीं जिसे एक बड़ी हकूमत के अभिमान के बल पर ख़रीदा जा सके।"

"मीर हुसैन ! बगावत की इन बातों को मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ। अब भी तेरे लिये मौक़ा है। चित्ररेखा को प्रेम करने से बाज़ आ जायगा तो तेरी जान बख़्शी हो सकती है।"

"मीर हुसैन प्राणों के भय से अपने सही रास्ते से हटना नहीं जानता।" इतना कहकर मीरहुसैन किसी गम्भीर विचार में डूब गया।

शाहबुद्दीन की आज्ञा से मीर हुसैन बन्दी बना दिया गया। हर समय उस पर कड़ा पहरा रहने लगा। इस प्रकार शाहबुद्दीन ने दो प्रेमियों को एक दूसरे से अलग कर दिया।

चार

एक दिन अवसर पाकर चित्ररेखा ने मीर हुसैन को शाहबुद्दीन की कैद से मुक्त करा लिया और उन दोनों ने ग़ज़नी से भारत आकर

पृथ्वीराज की शरण ली। पृथ्वीराज ने उन्हें अभयदान दिया।

मीर हुसैन ने मुस्कराते हुए कहा, "चित्ररेखा, हिन्दू धर्म बड़ा उदार है। मैं आज समझा कि हिन्दू अपनी आपत्ति की कोई भी चिन्ता न करके संकट में पड़े हुओं को किस प्रकार आश्रय देना जानते हैं। पृथ्वीराज हमारे साथ मेहमानों का सा बर्ताव करता है। वह महान है।"

"आपने भी तो एक साधारण नर्तकी के लिये अपने जीवन को अर्पण कर दिया था।"

"उससे अधिक महत्व इस बात में है कि तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर बन्दीगृह से मुझे मुक्त कराया।"

इस प्रकार से दोनों प्रेमी वार्तालाप कर रहे थे और अपने भविष्य को सुखमय और संकट रहित बनाने का स्वप्न देख रहे थे। ठीक इसी समय महाराज पृथ्वीराज उधर आ पहुँचे। चित्ररेखा ने उनको उचित सम्मान देकर पर्वत शिला पर बिठाया।

"चित्ररेखा! तुम लोग यद्यपि राजनी छोड़कर यहां चले आये हो परन्तु अभी तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल दिखाई नहीं पड़ता।"

"महाराज! क्या भारत लौट आने पर भी हम सुरक्षित नहीं हैं?"

"नहीं, अभी भय है कि न जाने शाहबुद्दीन कौन सा कपट जाल बिछाये।" इतना कहकर एक पत्र चित्ररेखा को देते हुए कहा, "इस पत्र को पढ़ो। उसका विचार ज्ञात हो जायगा।"

चित्ररेखा ने पत्र को पढ़ा। एक बार नीचे से ऊपर तक पत्र पढ़कर उसे फिर पढ़ा। उसका मस्तक घूम गया। अशान्त मन,

घबड़ायी आवाज़ में उसने पूछा—"क्या वह भारत आकर मुझे बन्दी बनाकर ले जायगा ? क्या सचमुच मेरे सामने ही मेरे प्यारे प्रेमी का वध कर देगा ? महाराज ! मैं आपकी शरण में आई हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।"

मीर हुसैन यह सब बातें सुन रहा था। उसने पृथ्वीराज के उपकार को मानते हुए कहा—"महाराज ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं स्वयं ही गज़नी लौटकर शाहबुद्दीन का कैदी बन जाऊं ? इस प्रकार न तो आप पर ही कोई संकट आयगा और न चित्ररेखा पर ही कोई आपत्ति आयेगी।"

"मीर हुसैन ! तुम मेरे मित्र हो। राजपूत शरण में आये व्यक्ति की रक्षा अपने प्राण देकर भी करना अपना धर्म समझता है। शाहबुद्दीन मेरा बाल भी बांका न कर सकेगा। तुम लोग निर्भय होकर अजमेर में जीवन व्यतीत करो।"

अधिक रात्रि बीत जाने के कारण सभी अपने अपने स्थान की ओर चले गये।

पांच

शाहबुद्दीन पृथ्वीराज का निराशाजनक उत्तर पाकर बहुत क्रोधित हुआ। उसने अपने सेनानायक तथा मन्त्री को बुलाकर तुरन्त पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का निश्चय कर दिया।

शाहबुद्दीन का सेनापति तातारखां यवनों की एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण के लिये आगया। इधर पृथ्वीराज ने भी युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। मीर हुसैन स्वयं सबसे अगली पंक्ति में जाकर

युद्ध करने के लिये उत्सुक था। पृथ्वीराज उसे संकट में पड़ने नहीं देना चाहता था।

अन्त में पृथ्वीराज ने मीर हुसेन के आग्रह को मानकर उसे तातारखां का सामना करने के लिये भेज दिया। मीरहुसैन वीरता से युद्ध करता रहा। सहस्त्रों यवनों को उसने युद्ध क्षेत्र में मार गिराया। स्वयं तातारखां भी उसके हाथ से घायल हुआ परन्तु अन्त में मीर हुसैन युद्धस्थल में मारा गया।

पृथ्वीराज ने गम्भीर मुद्रा में कहा "चित्ररेखा! मुझे मीरहुसैन की मृत्यु का बड़ा दुख है। वह बहादुर था। उसने युद्धक्षेत्र में एक बहादुर के समान अपने प्राण दिये। अब तुम्हारी रक्षा का भार मुझ पर है। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं।"

चित्ररेखा ने नीची दृष्टि से विनम्र शब्दों में उत्तर देते हुये कहा "महाराज! आपने हमें अपने राज्य मे शरण दी। हम आपका उपकार मानते हैं। उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया मुझे इसका दुःख नहीं। जीवन और मृत्यु दोनों साथी हैं। इसमें किसी का वश नहीं। परन्तु अपने बारे में मुझे कुछ महाराज से निवेदन करना है।"

"चित्ररेखा! तुम निःसंकोच कहो।"

"महाराज! मैं सौराष्ट्र देश की एक नर्तकी थी। परन्तु मैंने शुद्ध हृदय से मीर हुसेन को अपना पति चुना था। मैंने जीवन में किसी दूसरे व्यक्ति से प्रेम नहीं किया। मैंने उनको ही अपना सर्वस्व माना वे मेरे पति थे और मैं उनकी पत्नि। पत्नि के रूप में मुझे अपना कर्तव्य पालन करना है। इससे अधिक मेरी कोई इच्छा नहीं।"

"चित्ररेखा ! तुम जिस प्रकार भी अपना कर्तव्य पालन कर सकती हो, मेरे राज्य में रहकर उसे पालन करो। तुम्हें सर्व प्रकार की सुविधायें प्राप्त होंगी।"

"महाराज की कृपा के लिये धन्यवाद। इसी आशा पर तो अब तक महाराज की छत्रछाया में जीवन बिताया। परन्तु अब मेरा कर्तव्य कुछ और है। मैं भी चाहती हूँ कि एक सती नारी के आदर्श का पालन करूं।"

पृथ्वीराज कुछ भी उत्तर न दे सका। वह जानता था कि मीरहुसैन मानवता का पुतला था। उसका हृदय कितना पवित्र था और मित्रता को निभाने के लिये उसने अपने आपको न्यौछावर कर दिया। वह उसका साथी बनकर शाहबुद्दीन के साथ लड़ा। उसने हिन्दू मुस्लिम भेदभाव को भुला दिया था। वह मनुष्य था और मनुष्यता को जीवित रखना चाहता था।

पृथ्वीराज की गम्भीर मुद्रा को देखकर चित्ररेखा उनके पास से बिना कुछ कहे चली गई।

सात

मीरहुसैन की उसके धर्म के अनुसार सुन्दर कब्र बनाई गई। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उसकी क़ब्र पर पुष्प समर्पित किये।

पास में चित्ररेखा का शव भी दफ़नाया गया। उसने सती नारी के समान अपना जीवन दे दिया। उसने मीर हुसैन के साथ मरने में जीवन समझा। पृथ्वीराज के पास से विदा होकर चित्ररेखा ने तेज़ छुरी से आत्मघात कर लिया।

जब शाहबुद्दीन को चित्ररेखा की मृत्यु का समाचार मिला तो वह आह भरकर रह गया।

आंख मिचौनी

अ

उस दिन हलकी हल्की बूंदें पड़ रही थीं। चारों ओर पर्वत की ऊंची ऊंची चोटियां बादलों से ढकी हुई अत्यन्त शोभायमान लग रही थीं। वर्षा का मोती जैसा स्वच्छ जल झरनों के रूप में शब्द करता हुआ गिर रहा था। कहीं उसकी धारा मोटी थी और कहीं पतली। कहीं इसका शब्द तीव्र था और कहीं मध्यम। हम लोग साधारण गर्मी के वस्त्र पहन कर घूमने के लिए चले थे। ठंडी हवा और वर्षा हो जाने की कोई कल्पना भी न की थी। थोड़ी देर में ही हमारे साथी ठंड अनुभव करने लगे। हमारे कुछ साथी हट्टे कट्टे नवयुवक थे। ऋतु के इस परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा अपितु वे इसे और आनन्ददायक अनुभव करने लगे, अपने कमज़ोर साथियों को सिकुड़ते देखकर हंसी उड़ाने लगे। हमारे साथ में कुछ बच्चे भी थे। ओ३म् तो उन नवयुवकों से भी आगे बढ़ता हुआ चला आ रहा था। कमीज़ का गला खुला था। आधी बाहें उघरी हुई थीं परन्तु उसे ठण्ड की कोई चिन्ता न थी। इसी प्रकार दूसरे बच्चे भी

पर्वतों के दृश्य को देखते हुये आगे बढ़ रहे थे। पर्वतों के उतार और चढ़ाई के आकर्षक दृश्य ने सभी में उत्साह उत्पन्न कर दिया था।

साथ में दो तीन महिलायें भी थीं। इनमें से एक महिला की नीली साड़ी सुकड़कर शरीर से चिपट गई थी। लाल ब्लाउज़ का रङ्ग नीली साड़ी को पार करके बाहर चमकने लगा था। एक बात और थी, जब तीव्र वायु का शीतल झोंका उसके मुंह पर लगता था तो वह धीमी सिसकारियां भरने लगती थी। दूसरी खद्दर धारी महिला को भीगे हुये कपड़े बड़े भार स्वरूप लग रहे थे। परन्तु उनकी किसी बात से ऐसा प्रगट न होता था कि वह भी ठण्ड का अनुभव कर रही हैं।

हमारे साथियों में हरी एक ऐसा व्यक्ति था जो कोई न कोई हंसी की बात कह उठता था। इस कारण हमारे साथी उस ठण्ड की ओर कोई ध्यान न दे रहे थे। अपनी अपनी धोतियां जो स्नान करने के लिये साथ ले ली थीं, सभी ने अपने सिरों पर डाल ली थीं जिससे बूंदों से कुछ बचाव हो जाय। हरी ने अपनी नीली धारी का मोटा तौलिया सुकड़ने वाली महिला के सिर पर डाल दिया था जिससे ठंड से कुछ बचाव हो जाय। इस पहाड़ी सैर से वह महिला भी बड़ी प्रसन्न थीं। वे एक इण्टर कालिज में शिक्षा का काम करती थीं।

ब

जिस पर्वत श्रेणी पर हम यात्रा कर रहे थे उस पर किसी व्यक्ति ने पहाड़ी का कुछ भाग कांट छांट कर अपने रहने के लिये दो झोंपड़ियां बनाली थीं, इनमें से एक कुछ बड़ी थी और दूसरी छोटी।

जिस समय हम सब उस झोंपड़ी के निकट पहुँचे तो उसमें से एक पहाड़ी महिला ने हमें भीगते हुये देखा। उसने हमारे प्रति सहा-

नुभूति प्रगट करते हुये कहा "पानी पड़ रहा है थोड़ी देर ठहर जाओ।"

हम लोग तो पचास क़दम दूर से ही यह सोचते चले आ रहे थे कि झोंपड़ी आने पर हम वहां पर रुकेंगे। कपड़ों को निचोड़कर कुछ सुखा लेंगे। उस महिला के स्वयं पूछ लेने से हमारे लिये वहां ठहर जाना और भी सुविधाजनक हो गया। वैसे इन लोगों में श्रद्धा व प्रेम इधर के लोगों की अपेक्षा अधिक प्रतीत होता था।

हम सब लोग उस झोंपड़ी के छप्पर के नीचे खड़े हो गये। उस पहाड़ी महिला ने हमारे लिये अपनी एक चारपाई भी खाली करदी। बड़े सन्मान के साथ उस पर बैठने को कहा। हमारे साथ की प्रोफेसरनी तथा दो अन्य महिलायें बैठ गईं हम सब खड़े हुये पर्वतमाला का रमणीक दृश्य देखते रहे।

हमारे दो तीन साथियों ने अपने रूमाल निकालकर मुंह पर लगाने शुरु कर दिये। इसका कारण यह था कि झोंपड़ी में कुछ दुर्गन्ध सी उठ रही थी। चमड़े के छोटे २ टुकड़े कई स्थानों पर एकत्रित थे। पानी में भीग जाने से उनमें से चमड़े की दुर्गन्ध उठ रही थी।

इस झोंपड़ी का स्वामी सेलू था। वह कांगड़े की ओर का रहने वाला मोची था। पहाड़ी जूते बनाकर वह अपने परिवार का पालन पोषण करता था।

अपने स्वभाव के अनुसार हमने विनोद पूर्ण शब्दों में सेलू का दिल टटोलने के लिये कहा "सेलू! आज तो तुम्हारे घर बहुत से मेहमान आ गये!"

"फिर क्या चिन्ता है ?"

"अच्छा भाई ? फिर तुम हमें क्या खिलाओगे ?"

"घर में आटा रक्खा है। नमक डलवाकर रोटी बनवा दूंगा।"

"यदि रोटी न खायें तो ?"

"तो मालिक अभी ज़रा सी देर में पास की दुकान से मैं चावल ले आऊंगा। थोड़ी दूर पर एक और दूकान है वहां से बूरा ले आऊंगा।"

"बूरा चावल खिलाओगे भाई ?"

"महाराज यहां तो ये ही चीज़ें मिल सकती हैं।"

"सेलू ! हम तुम्हारा बहुत सा सामान खा जायेंगे। कई दिन तक जिस सामान को तुम्हारा परिवार खायगा वह अभी ज़रा सी देर में समाप्त हो जायगा। तुमको कष्ट होगा।"

"महाराज ! मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा कि आप मेरे यहां भोजन करें। आप जैसे महमान रोज़ रोज़ कहां मिलते हैं। दाता सब के गुज़ारे का प्रबन्ध करता है। उसी का भरोसा है।"

इसी बीच में सेलू का छोटा बच्चा रोने लगा। मुसकराती हुई सेलू की स्त्री उस बच्चे को उठा लाई। उसे चुमकार कर प्यार किया और बात की बात में उसे चुप कर लिया। सेलू की पत्नि हमारे पास ही प्रोफेसरनी के पास आकर बैठ गई। वह हम सबको अपनी झोंपड़ी में खड़े देखकर प्रसन्न थी। छूत छात, ऊंच नीच का भेद पर्वतों में और भी भयंकर रूप धारण किये हुए है। सम्भव है उसे यह प्रसन्नता हो रही हो कि इतने उच्च वर्ण के ये लोग हमारी झोंपड़ी में आये और

इस प्रकार से वार्तालाप कर रहे हैं जिससे ऊंच-नीच का भेद–भाव प्रगट नहीं होता।

हमने सेलु की पत्नि से पूछा "बच्चे का क्या नाम है ?"

"यशोदा"

"और यशोदा की मां का क्या नाम है ?"

"राधा"

"नाम तो तुमने बहुत अच्छा रक्खा है। जब तुम्हारा नाम राधा है तो अच्छा होता सेलू का नाम कृष्ण रक्खा जाता।"

बात पूरी होने भी न पाई थी कि हमारे इस विनोद पर हमारे साथी बिगड़ने लगे। साथ वाली प्रोफेसरनी ने हिम्मत करके कहा, "एक तो बेचारे ने पानी पड़ते में स्थान दिया, दूसरे उसी की हंसी उड़ाते हो ?"

"नहीं, मैं हंसी नहीं उड़ाता। राधा और कृष्ण दोनों नाम साथ साथ अच्छे लगते हैं। अच्छा जाने दीजिये अब कोई ऐसी बात न होगी।"

परन्तु उसी क्षण राधा से पूछा "तुम्हारे और कितने बच्चे हैं ?"

"वह देखो सामने झाड़ियों के पास मेरी बड़ी लड़की रुकमनी खड़ी है।" इतना कहकर वह बड़ी प्रसन्न हुई।

हमने फिर एक बार पूछा "रुकमनी के सिवाय और कितने बच्चे हैं ?"

"बस महाराज, दो हमारे बच्चे और दो हम, कुल चार प्राणी हैं।"

स

हमने थोड़े से समय में ही सेलू के विषय में बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त कर ली। उसके हाथ की वह सफाई भी देखी जो वह पहाड़ी जूते बनाने में प्रगट कर रहा था। उसकी हृदयगत भावना को भी परखा जो वह चावल बूरा खिलाने में प्रगट कर रहा था। उसने भक्तिपूर्ण दो चार दोहे भी सुनाये जो प्राचीन सन्त कवियों ने रचे थे। उसका उच्चारण बड़ा शुद्ध था। उसकी वाणी में मधुरता थी। उस के दोहे सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ कि सेलू ईश्वर का सच्चा भक्त है। उसकी प्रत्येक बात से सत्यता प्रगट होती थी।

वर्षा बन्द हो गई हमारे साथियों ने चलने की तैयारी की। जो वस्त्र सूखने को झोंपड़ी में इधर उधर फैला दिये थे, उठा लिये। हमने सोचा कि सेलू के छोटे बच्चे को कुछ पैसे दिये जांय। जेब से पैसे निकाल ज्योंही हमने यशोदा को दिये सेलू कहने लगा "महाराज! ऐसा न करो।"

भाई सेलू! बच्चे को दो चार पैसे देने में क्या हानि है? हम भी तो अपने बच्चों को दो चार पैसे दे देते हैं। और तुम भी तो अभी हमें चावल बूरा खिला रहे थे और तुम हमारे पैसे देने को भी बुरा समझते हो।"

"आपके पैसे सिर आंखों पर परन्तु यहां तो अनेकों यात्री नित्य आते जाते रहते हैं। यहां कुछ देर बैठ भी जाते हैं। आप की तरह दो चार बातें भी कर जाते हैं। यदि इस प्रकार से मैं पैसे लेकर रखने लगूं तो मेरा दिल भिखारी बन जाय। आप अपने पैसे अपने पास ही रखिये।"

सेलू की बात ने हमारे हृदय पर गहरा आघात पहुँचाया। अपने दिल को भिखारी न बनने देने के लिये न जाने उसने कितने उतार चढ़ाव देखे थे। हमने सेलू की बात से यह अनुमान कर लिया कि ग़रीब होते हुए भी सेलू का दिल ग़रीब न था।

८

कई वर्ष बीत चुके थे। हमें एक बार फिर सेलू की झोंपड़ी की तरफ़ पहाड़ी सैर के लिये जाने का अवसर मिला। इस बार भी हमारे साथ कई साथी थे। हमने अपने एक साथी से कहा "प्रोफेसर साहब! आपकी हम एक पहाड़ी भक्त से भेंट करायेंगे।"

"वह कोई आप जैसा ही भक्त होगा।"

"नहीं, हम से कहीं अधिक श्रेष्ठ और सज्जन।"

बात करते करते हम लोग सेलू की झोंपड़ी के पास जा पहुँचे। झोंपड़ी को कई बार झांककर देखा परन्तु यह खाली थी। न वहां सेलू था और न राधा। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि सेलू कहां चला गया। उसकी दुकान तो अच्छी चलती थी। वह कहता था कि मुझे यहां रहते दस वर्ष बीत गये।

हम लोग कुछ और आगे बढ़े। दो तीन व्यक्ति हमें गाय, बकरी आदि चराते हुए दिखाई दिये। हमने उनसे पूछा, "कहो भाई! पीछे वाली झोंपड़ी में रहने वाला मोची कहां चला गया?"

"क्या सेलू मोची?"

"हां भाई, वही।"

उसने हाथ का संकेत करके बता दिया कि यहां से एक मील

दूर पहाड़ की एक घाटी पड़ेगी। वहां से कुछ दूर तक चढ़ाई आयेगी। उसके पास से एक मार्ग फिर नीचे घाटी में जायगा वहां आपको दो चार झोंपड़ियां मिलेंगी। वहीं पर आपको उसका पता मिल जायगा।

हमें सेलू से मिलने की प्रबल इच्छा थी। साथी कुछ नाक भौं सिकोड़ने लगे। कौन आफत में पड़े। हमने भी कह दिया, "आप लोग सीधे रास्ते से झरने पर पहुँचें और मैं सेलू से मिलकर आता हूँ।" हमारे इस प्रस्ताव पर सब चुप होगये और साथ ही चल दिये।

टेढ़े मार्ग व घाटियों को पार करते हुए हम एक बग़ीचे के पास जा पहुँचे। कुछ ही देर में हमें एक व्यक्ति पगड़ी बांधे आता दिखाई पड़ा। हमने उससे सेलू का पता पूछा। उसने विनम्र शब्दों में उत्तर दिया "मेरा नाम ही सेलू है।"

"भाई सेलू कुछ वर्ष बीते, हमने तुम्हें पीछे की झोंपड़ी में देखा था। उस समय पानी पड़ रहा था। तुम्हारी पत्नि ने अपने परिवार का परिचय दिया था। तुमने कबीर के कुछ दोहे भी सुनाये थे। अच्छा भाई! तुम्हारी राधा कहां है? यशोदा तो अब बड़ी हो गई होगी। रुकमनी का तो तुमने विवाह कर दिया होगा?"

हमारे प्रश्नों को सुनकर सेलू आश्चर्य में पड़ गया। वह सोचने लगा कि यह तो कोई जाति बिरादरी का परिचित व्यक्ति के समान उसके घर की बातें कह रहा है। उसने कई बार हमको देखा। जब उसे स्मरण हो गया कि हम उससे कुछ वर्ष पूर्व उसकी झोंपड़ी में मिले तो वह समस्त बीती बातें बताने लगा। उसने कहा "राधा अब संसार में नहीं। यशोदा को एक पाठशाला में पढ़ने भेज दिया है

और वह वहीं रहती है। रुकमनी का विवाह हो चुका। अब मैं अकेला इस बागीचे में अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। मैंने आने जाने वाले व्यक्तियों के आराम के लिए एक प्याऊ भी लगवा दी है।"

"मोची होकर तुम ऐसा काम करते हो?"

"शरीर से मैं मोची हूँ परन्तु मेरा हृदय मोची नहीं। क्या मोची के घर में उत्पन्न होकर कोई व्यक्ति सेवा कार्य नहीं कर सकता? भेद भाव रखने वाले भी मेरी सेवा से लाभ उठा सकें इसलिये मैंने अपनी प्याऊ पर एक पहाड़ी ब्राह्मण को नियत कर दिया है। यहां मैंने एक बागीचा भी लगा लिया है। कुछ खेती भी कर ली है।"

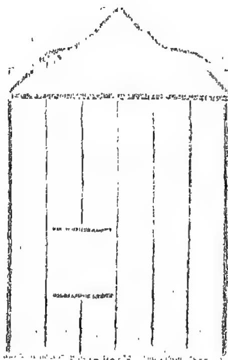
सेलू अपने बागीचे के कुछ फल ले आया। उसने प्रेम के साथ हमें फल दिये। हमने विनोदपूर्ण शब्दों में कहा "सेलू? जब हम तुम्हारे छोटे बच्चे को दो पैसे देते थे तो तुमने कहा था कि मेरा दिल भिखारी हो जायगा। अब हम तुम्हारे फल क्यों खांय।"

वह कहने लगा—"अब यह फल आपके ही हैं। मैंने मनुष्य मात्र की सेवा के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है। अब मैं स्वयं एक साधारण भिक्षुक के समान हूँ। मैं चाहता हूँ कि परमात्मा की आराधना करता हुआ मानव समाज तथा प्राणी मात्र की सेवा करता रहूँ। अब मुझे न परिवार की चिन्ता है और न किसी और व्यक्ति की।"

"सेलू! तुम धन्य हो। समाज की सेवा करने वाले सन्त मोची! तुम्हारा आदर्श मानव समाज का कल्याण करेगा। तुम्हारे

मार्ग पर चल कर संसार में ऊंच नीच का भेद करने वाले व्यक्ति सम्भल सकेंगे।"

इतना कहकर हमने सेलू से विदा ली। आज भी वह सन्त मोची पर्वतों में साधु रूप में जन-सेवा का महान् कार्य कर रहा है।



तन्हाई

१

दो पहर का भोजन हो चुका था। सभी साथी इधर उधर अपनी चौकड़ी जमाने की फ़िक्र में थे। शतरंज, ताश दो ऐसे खेल थे जिसमें दोपहर से सायंकाल हो जाना साधारण बात थी। ताश केवल दो जोड़ी मिले हुए थे। एक नई जोड़ी और दूसरी पुरानी। पुरानी की तो यह दशा थी कि ठीक प्रकार से पता भी न चलता कि ताश का कौन सा पत्ता है। विशेषतया अट्ठे और नहले में बड़ा धोखा होता था। बीच की बिन्दी मिट सी गई थी।

इसी समय हमारी बैरक में दो व्यक्ति नये प्रविष्ट हुए। उनमें से एक नवयुवक था और दूसरा जवानी को पार कर चुका था। इन का अच्छा स्वागत हुआ। सब से पहिले यह मालूम किया गया कि वे किस अपराध में आये हैं। दोनों व्यक्तियों ने बताया कि उन्हें पुलिस ने हथियार रखने में बन्द किया है। उनके साथ एक कवि भी आया है उसे उनसे अलग किसी और बैरक में बन्द किया गया है।

इनमें से एक कहता था कि उसके पास से रिवाल्वर पकड़ा गया और दूसरे का कहना था कि बन्दूक।

२

गंगा के खादर में मनुष्यों के चलने की बाट को छोड़कर खेतों में मार्ग बनाता हुआ, एक युवक दूर जा रहा था। पीछे से दो व्यक्ति उसकी ओर लपकते हुए आ रहे थे, युवक ने देख लिया था कि उस का पीछा किया जा रहा है। दौड़ा—पूरी शक्ति से दौड़ा। कांटों ने पांव छलनी कर दिये। परन्तु मातृभूमि के लिये कुछ कर लेने की चाह ने उसे बल दिया। झाड़ियों को चीरता, गढ़ों को फांदता, युवक आगे बढ़ा। परन्तु पीछा करने वालों ने भी न जाने किस विशेष प्राप्ति के लोभ में जान तोड़कर उसे पकड़ने की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि युवक पकड़ा न जा सकेगा कोई चाल चली जाय। उच्च स्वर से पुकारा "डाकू है भागा जा रहा है इसे पकड़ो"

खेत पर दो तीन व्यक्ति काम कर रहे थे। उन्होंने आवाज़ सुनी और लाठी लेकर उस युवक पर झपटे। एक व्यक्ति की लाठी सीधे कन्धे पर लगी और दूसरे की टांग में।

युवक ने चीख भरी और वह रुक गया। उसने भागने का विचार छोड़ दिया और वहीं बैठ गया।

खेत पर काम करने वालों में से एक ने कहा "भैया डाका मारते हो और पहिनते हो गाढ़े का कुरता? क्यों! अब कहां बचकर भागोगे?"

युवक चुप था। इतनी ही देर में पीछा करने वाले दोनों व्यक्ति भी आ गये। युवक को पकड़ लिया और दोनों व्यक्तियों की सहायता से थाने में ले आये।

डेढ़ मास बीत जाने पर युवक का मुक़दमा प्रारम्भ हुआ। जेल मे ही मजिस्ट्रेट के सामने मुक़दमे की सुनवाई प्रारम्भ हुई। हमारी बैठक में आये हुए दोनों व्यक्तियों पर भी वही मुक़दमा प्रारम्भ हुआ। पुलिस का कहना था कि तुम दोनों ने कवि 'कमल' को अपने घर में स्थान दिया। उसकी बन्दूक़ को छिपाये रक्खा और अराजकता फैलाने में सहायता दी।

'कमल' सुलझा हुआ युवक था। वह नहीं चाहता था कि उस के कारण कोई और व्यक्ति फंसे। उसने अपने बयान में उन दोनों व्यक्तियों को निर्दोष बताया। उसने केवल बीमार होने की दशा में उनके पास कुछ घण्टे ठहर जाना स्वीकार किया। मैजिस्ट्रेट को उसकी बात पर विश्वास हो गया और उसने दोनों व्यक्तियों को मुक्त कर दिया। 'कमल' को पांच वर्ष की सज़ा हुई। उस पर दो मुक़दमें थे। एक मुक़दमें में तीन वर्ष की और दूसरे में दो वर्ष की सज़ा हुई।

कमल ने अपने परिवार के किसी व्यक्ति को कोई सूचना न दी। न उसने कभी यह बात प्रगट होने दी कि वह कभी वायसराय के दफ्तर में नौकर था। उसने कभी मुलाकात के लिये भी अपने किसी सम्बन्धी या मित्र को नहीं बुलाया।

कमल ने मैजिस्ट्रेट के सामने उस बन्दूक़ को अपनी बन्दूक़ स्वीकार कर लिया था कि भारत की स्वतंत्रता के लिये उसने सरकारी नौकरी छोड़कर १९४२ के आन्दोलन में भाग लिया।

४

बैरक के साथी कमल का बड़ा सम्मान करते थे। प्रायः कवि जी कहकर उसे पुकारते। कमल में एक विशेष गुण यह था कि वह अपने जेल के साथियों के प्रति बड़ी सहृदयता का व्यवहार करता था। जेल अधिकारियों के साथ उसकी कभी न पटती थी। वे चाहते थे कि साधारण सी क्लास के कैदी की तरह उसके साथ बर्ताव हो। कमल चाहता था कि जेल अधिकारी उसे राजनैतिक कैदी समझें और जेल नियमों के अनुसार उसे तथा उसके साथियों को वे सब सुविधायें दें जिसके वे अधिकारी हैं।

कमल की बैरक का जमादार कठोर प्रकृति का व्यक्ति था। उसने कई मास तक बी क्लास के कैदियों की बैरक पर ड्यूटी दी थी। वहां उसे किसी व्यक्ति का बचा हुआ डबल रोटी का टुकड़ा मिल जाता था और किसी से तोला दो तोला चीनी। कभी कोई व्यक्ति बीड़ी पिला देता था तो कभी चाय की एक प्याली। परन्तु सी क्लास वालों के लिये ये सब वस्तुयें देना कठिन था। उसका कद लम्बा था। लम्बी लम्बी मूंछें रखता था। रंग सांवला था और नाक कुछ लम्बी। उसके दूसरे साथी उसकी अकड़ से परेशान थे। उन पर उसने काफी प्रभुत्व स्थापित किया हुआ था। उसका कारण था वह जेलर के मुंह लगा हुआ था। उसके साधारण संकेत पर जेलर उसके दूसरे साथी जमादारों की दरवाजे पर तलाशियां ले लेता था। उनके पैर की पट्टी खुलवाकर देखता कि उसमें किसी कैदी का परचा तो छिपाकर नहीं ले आये हैं।

कमल इस कठोर प्रकृति वाले जमादार से भी न दबता था। जमादार उसे ताड़ना देता तो वह और उलटकर उसे डांट देता था। कभी कभी तो जमादार यही कहकर चुप होता मालूम पड़ता था, 'जेल में हकूमत करने आये हो। याद रखना अब तो बात बढ़ते हो, फिर चक्की में दिये जाओगे।"

बहादुर कमल को चक्की से क्या डर था। वह उसे और भी कड़ा उत्तर देता "क्या तू जेल का सुपरिन्टेण्डेण्ट बन गया है?"

जमादार और कमल के बीच संघर्ष चला। परिणाम यह हुआ कि जेलर ने उसकी पेशी करा दी। कमल को जेल नियम उल्लंघन करने के अपराध में पंद्रह दिन की तन्हाई की आज्ञा दी गई।

कमल ने अपना सामान उठाया और बैरक नं० ४ की तन्हाई की कोठरी में बंद हो गया।

तन्हाई से प्रायः कैदी डरते हैं। बैरक के साथी छूट जाते हैं। लोहे के जंगले लगी एक छोटी सी अन्धेरी कोठरी में कैदी को रहना पड़ता है। न धूप मिलती है और न हवा लगती है। उसी में चौबीस घंटे का जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

बहादुर कैदी इस सज़ा को भी हंसते हंसते सहन करते हैं। कमल इन्हीं व्यक्तियों में से था जो तन्हाई की सज़ा को खेल समझते हैं।

सारी जेल में यह बात बिजली की तरह फैल गई कि कवि जी को तन्हाई की सज़ा दी गई है। परन्तु इसमें कोई व्यक्ति भी कुछ भी सहायता न कर सकता था।

तन्हाई में रहते हुए भी कवि जी को चैन न लेने दिया। सुपरिन्टेन्डेन्ट जैल के आने पर जेल वाले चाहते थे कि वह अखलाकी कैदियों के समान सीधा खड़ा हो जाय। परन्तु कवि जी को उनसे क्या लेना था। पैरेड के दिन जेलर ने तन्हाई की कोठरी के पास पहुँचकर कहा "साहब बहादुर के सामने अपना टिकट लेकर खड़े हो जाओ।"

कवि जी को साहब बहादुर से क्या लेना था। जेलर को स्पष्ट उत्तर दे दिया "हमें खड़े होने की आवश्यकता नहीं। टिकट दिखाकर हमें कुछ नहीं मांगना।"

जेलर क्रोधित हो गया परन्तु वह कर ही क्या सकता था। केवल एक बात उसके अधिकार में थी कि कवि जी पर सख्ती करे। जेल नियमों के अनुकूल उनको सुविधायें न दे। परन्तु कवि तो तपा तपाया वीर पुरुष था। उसे सुविधाओं की कौन चिन्ता थी।

४

कवि बीमार पड़ गया। तन्हाई में पड़े पड़े दो वर्ष का लम्बा समय बीत चुका था। जेल नियमों के अनुकूल उनको इतने समय तक तन्हाई में नहीं रक्खा जा सकता था। परन्तु जेल का संसार निराला संसार है। पंद्रह दिन की तन्हाई और फिर दो दिन बैरक में रहना दिखाकर जेल अधिकारियों ने दो वर्ष का समय निकाल दिया।

कवि का शरीर दुबला हो गया। रंग भी कुछ काला पड़ गया। कितने ही सप्ताह जेल अस्पताल में बिताने पड़े परन्तु वहां सुनता कौन था। उसके मानव शरीर को दबाने का हर प्रकार का यत्न किया गया परन्तु उसकी आत्मा पर कोई भी आधिपत्य स्थापित न कर सका।

बाहर के मित्रों में चर्चा चली 'कवि बीमार है'। कुछ ने निश्चय किया कि उससे मुलाकात करनी ही चाहिये परन्तु उसने सभी की मुलाकात अस्वीकृत कर दी। बिना कैदी की स्वीकृति के कोई व्यक्ति जेल में आकर मुलाकात नहीं कर सकता। वैसे तो अधिकारी भी ऐसे कैदी की मुलाकात कराना पसंद नहीं करते। उनकी दृष्टि में कवि दोषी था। दोषी को न तो पत्र लिखने की सुविधा दी जाती है और न घर वालों से मुलाक़ात करने की आज्ञा।

जेल के कुछ साथियों ने कवि को समझाया कि अब उन्हें कुछ नम्र हो जाना चाहिये। जेल वालों से टक्कर लेते रहने में उनके जीवन का ख़तरा है। परन्तु कवि ने इन सब बातों पर कोई ध्यान न दिया और केवल आत्म-सम्मान की रक्षार्थ अपने निश्चय पर अटल रहना ही उचित समझा।

कवि की तन्हाई की कोठरी से मिली हुई दोनों ओर दूसरी कोठरियां भी थीं। इनके सामने की पंक्ति में भी कुछ कोठरियां बनी हुई थीं। इन कोठरियों में बराबर कैदी आते जाते रहते थे। कोई दस दिन काटता था कोई पन्दरह दिन। राजनैतिक कैदी तो बहुत कम आते थे प्रायः अख़लाक़ी कैदी बन्द होते रहते थे। इनमें कोई कोई तो पांच पांच छः छः बार के सज़ा काटे होते थे।

कैदी, कैदी से परिचय शीघ्र कर लेता है। राजनैतिक कैदियों को भी जेल के साधारण कैदियों के प्रति सहानुभूति होती है चाहे वह किसी को क़तल करके ही क्यों न आया हो। जेल में न तो डाकू को देखकर भय लगता है और न चोर से घृणा होती है।

कवि के पास वाली कोठरी में तेजसिंह बन्द था। जेल वाले उसे तेजा पुकारते थे। वह नवयुवक था। उसकी आयु बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। देखने से वह किसी सम्भ्रान्त परिवार का प्रतीत होता था। वह कोठरी के दरवाजे पर खड़ा होकर कवि को पुकारता और किसी न किसी विषय पर बातें करने लगता। कवि उदार हृदय व्यक्ति था। उसे भी कुछ काम न था। वह भी पास में आने वालों से बातें करके अपना समय व्यतीत कर देता था।

कवि ने पूछा "तेजसिंह तुम किस अपराध में आये हो?"

"ज़मींदार के घर डाका डालने और सख्त चोट पहुँचाने में।"

"तुम जैसे नौजवान डाका मारकर जेल आते हो। इस तरह से तो तुम्हारा जीवन बरबाद होता है। यदि तुम देश के लिये कुछ काम करके जेल आते तो अच्छा था।"

"ठीक कहते हो कवि, इस प्रकार जेल आने में तो जीवन बरबाद होता है। परन्तु मैं डाकू न था और न मुझे डाके से ही कोई काम था।"

"फिर तुम्हें डाके में क्यों पकड़ा?"

"डाकुओं के साथ जाने में।"

"फिर तो पुलिस ने ठीक ही किया। मौके पर पकड़े गये और फिर भी पश्चात्ताप करते हो? तुम डाकुओं के साथ क्यों गये?"

"कवि जी इसमें प्रेम का रहस्य था। मैं किसी भूखे नंगे घर का लड़का नहीं। मेरे घर वाले खेती करते हैं। उनको छोटे मोटे ज़मींदार समझिये।"

"अच्छे घर के होकर तुमने डाकुओं से मेल क्यों किया?"

"वही तो मैं आपको बता रहा था। डाकुओं के गिरोह की सरदारी एक नौजवान लड़की करती थी। उससे मेरा मेल होगया था। उसके साथ रहकर मैंने उसे एक बार वचन दे दिया था कि मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूंगा। तुम मुझे जिस काम के लिये कहोगी, मैं उसे पूरा करूंगा। देखा जाय तो मैंने अपने आपको उसके अर्पण कर दिया था। उसी प्रतिज्ञा के वश मैं उसके साथियों के साथ पकड़ा गया।"

"उस लड़की का क्या हुआ?"

"वह साफ बच गई। पुलिस देर में आई। गांव वाले उसका सामना न कर सके। उसके साथी डाका डालने में लगते थे और वह द्वार पर खड़ी रहती थी। उसकी हाज़री में एक मुश्की घोड़ा, उसके दो साथी तैयार खड़े रहते थे। उसे फिर कौन पकड़ सकता था। बड़े बड़े दारोग़ा उसके लिये टक्कर मार चुके थे परन्तु उसका कोई पता न लगा सका।"

"इस तरह वह कब तक बचती रहेगी। कभी न कभी पकड़ी ही जायगी।"

"बचे या न बचे। परन्तु वह बड़ी बहादुर है। जिस समय वह दुपट्टा बांधकर, चूड़ीदार पाजामा पहनकर घोड़े की सवारी करती है तो यही प्रतीत होता है कि वह कोई योद्धा सिपाही है। कई बार उसको चोट भी आई। एक बार तो आध घंटे से अधिक दारोग़ा से बातें कीं परन्तु वह यह न समझ सका कि जिस डाकू को पकड़ने के लिये वह जंगल की खाक छान रहा है, यह वही नौजवान लड़की है।"

तेजसिंह अपने साथी डाकुओं का भी परिचय देता रहा। उस लड़की का परिचय देते देते वह किसी गम्भीर विचार में पड़ गया,

कवि ने पूछा "क्या जेल में भी तुम्हें वह लड़की याद आती है?"

"कवि जी! याद भुलाई नहीं जा सकती। परन्तु याद करने से लाभ ही क्या है? अभी तो उससे मिलना नहीं हो सकता। पूरे पांच वर्ष काटने हैं। अभी केवल सात महीने ही तो कटे हैं।"

"अच्छा यह तो बताओ—तुम्हें तन्हाई की कोठरी में क्यों बंद किया गया है?"

"नम्बरदार से झगड़ा हो गया था। दस सेर आटा पीस लेने पर भी नम्बरदार और जमादार दोनों मेरी जान मार लेना चाहते थे। चाहते थे पांच सेर दूसरे का भी पीस दूं। अच्छा आप तन्हाई में क्यों बंद हैं?"

"तेजसिंह! हमें बैरक में रहने में आनन्द नहीं आता। यहीं एकान्त में पड़े रहते हैं।"

"कवि जी! मेरा मतलब आपके जेल आने से है।"

"तेजसिंह! हमारा मामला तुमसे भी लम्बा है। वैसे साधारण तौर पर तो हम कांग्रेस के मामले में बंद हैं। हमने कोई डाका नहीं मारा है।"

इस प्रकार दोनों कैदी एक दूसरे की बातों में आनन्द लेते रहे। कैदियों की आपस की बातों में ही तो उनकी जेल कटती है।

कवि ने अपने साथी से फिर पूछा "क्या उस लड़की का विवाह हो गया?"

"विवाह हो गया था परन्तु वह नहीं के बराबर समझिये। विवाह के पश्चात् उसका पति एक डकैती में गोली से मारा गया। उसके पश्चात् इस लड़की का एक दो डाकुओं से मेल होगया।

उन्हीं के साथ में मैं भी सम्मिलित था। उसने मुझसे प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया। इसका फल यह हुआ कि मैंने अपने आपको उसी को सौंप दिया।"

"तो क्या तुम जेल से छूटकर फिर यही काम करोगे?"

"कवि जी! वही काम करना होगा जो वह करायेगी। यदि उसने डाका मारना छोड़ दिया तो फिर मुझे काहे को इस काम में पड़ना है?"

बातों बातों में तेजसिंह ने कवि को यह भी प्रगट कर दिया कि वह अपने माता पिता का एकमात्र इकलौता पुत्र है। उसने यह भी कह दिया कि जेल से छूटकर वह उसी लड़की के पास जायगा क्योंकि उसने उसे अपनी पत्नि बनाने का वचन दे रक्खा है।

५

कवि के सिर के बाल काफी बढ़ गये थे। जेल वालों के साथ संघर्ष रखने से उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। कच्ची और खराब, मिट्टी मिले आटे की रोटियां खाने से उसकी अंतड़ियां खराब होगईं।

जेल अस्पताल में पड़े रहकर भी उसकी उचित चिकित्सा न हो पाई। मोटा हृष्ट पुष्ट कवि पतला पड़ गया। ५० पौंड के करीब उसका वज़न घट गया। परन्तु वह इतना होते हुये भी किसी जेल अधिकारी के सम्मुख न गिड़गिड़ाया। उसने कभी कोई सुविधा की याचना न की।

१९४६ में कांग्रेस मंत्री मंडल ने कार्य भार संभाला। राजनैतिक बंदियों के छुटकारे प्रारम्भ हुये। परन्तु कवि जी अपनी सज़ा पूरी कर

चुके थे। यदि जेल नियमों के अनुसार उन्हें कुछ दिन छूट के दिये जाते तो ये और भी जल्दी छूट जाते।

चुपचाप कवि जी छूटकर बैरक से बाहर आ गये। जेल द्वार पर उनका कुछ सामान जमा था। उसे लेकर कविजी ने अन्तिम विदा ली। जेलर ने व्यंग शब्दों में पूछा "कवि जी! आप जा रहे हैं परन्तु यह तो बताइये तन्हाई में आप कितने दिन रहे?"

"जेलर महोदय! आपको आये लगभग एक वर्ष हुआ। इस काल में आपने मुझे तन्हाई में रक्खा परन्तु इससे पूर्व पौने दो वर्ष मैं और उसी तन्हाई की कोठरी में रह चुका हूं। जहां जेल वालों को मुझे तन्हाई में रखना था वहां मुझे स्वयं भी उसी में रहना पसन्द था।"

चार वर्ष के पश्चात् जेल से बाहर आकर कवि ने अपने स्नेही जनों से भेंट की। बहिन ने तिलक लगाकर स्वागत करते हुए कहा, "आपने जेल की तन्हाई में रहकर सारा शरीर घुला दिया। घर वालों से कभी मिलना भी स्वीकार न किया। मुकदमें की पैरवी के लिये भी किसी को न आने दिया।"

"बहिन! देश के लिये सब कुछ करना ही पड़ता है। तन्हाई में रहने वाले कैदी के लिये यही अच्छा है कि वह किसी से कोई सम्बन्ध न रक्खे।"

मि श्री रि क र आ की

१

कड़ाके की धूप पड़ रही थी। शरीर से पसीना टपक रहा था। वायु बन्द थी। चारों ओर निस्तब्धता छा रही थी। केवल श्रमजीवियों का एक दल अपने काम काज में जुटा हुआ था। कुछ स्त्रियां भी काम में लगी हुई थीं। उनमें से कुछ वृद्ध थीं और कुछ अधेड़ आयु की। कुछ बालिकाएं भी थीं और कुछ युवतियां थी। वृद्ध स्त्रियां ठहर ठहर कर चलती थीं।

कुछ वृद्ध मज़दूर भी काम करते दीख पड़ते थे। उनमें से एक तो ऐसा प्रतीत होता था मानों बोझा ढोने के कारण उसका दम फूल गया है। यह बूढ़ा मज़दूर खासी था। पचास गज़ की दूरी को तीन बार रुक कर पूरी करता था। उसका एक फेरा होता था और दूसरे लड़के लड़कियां दो बार नौका पर बोझ डाल आते थे। हां अपनी शक्ति के अनुसार वह अवश्य काम में जुटा हुआ था। काम से न तो वह जी ही चुरा रहा था और न मालिक की चाकरी में ही चूक करना चाहता था।

जीवन अपने मालिक का कारिन्दा था। उसका काम इन सब मज़दूरों की देख रेख करना था। कर्कश कण्ठ से श्रमजीवियों को डांट लगाना उसका स्वभाव बन गया था। वह समझता था कि मज़दूरों को जितना ही डांट डपट करके वह काम लेगा, उतना ही उसका अधिक मान होगा। केवल डांट डपट तक ही बात नहीं रह जाती थी, बल प्रयोग करने से भी वह न चूकता था। आज भी जीवन कड़ी धूप में अपनी पतली छड़ी को प्रयोग में ला रहा था। मज़दूरों के छोटे छोटे बच्चे तो जीवन की तीव्र दृष्टि से ही भयभीत हो जाते थे। वह मज़दूर अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता था जिसपर उसकी क्रोधपूर्ण दृष्टि न पड़ती हो।

घासी को थक कर बैठा देखकर जीवन का क्रोध भड़क गया। उसने कर्कश स्वर में दूर से चिल्लाते हुए कहा—"कमबख्त! तेरे बस का काम करना नहीं है तो क्यों चला आता है?"

घासी ने कोई उत्तर न दिया। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। जीवन का क्रोध इस बात से और भी बढ़ गया। "क्यों घासी! मेरी बात का उत्तर भी नहीं देता? अच्छा कल से इधर न आना। तुझ जैसे भिखारियों के लिये मालिक ने कोई खैरातखाना नहीं खोला हुआ है।"

जीवन की बात सुनकर घासी का साहस और भी नष्ट हो गया। नम्र शब्दों में जीवन की चिरोरी करते हुए उसने कहा—"मालिक! अपनी शक्ति भर बड़े मालिक का काम कर रहा हूँ। भैया! बुड्ढा शरीर है। अब इतनी हिम्मत नहीं रही कि बीच में ठहरे बिना नौका तक बोझ ले जा सकूं।"

"तो फिर मालिक का काम बिना पूरा किये ही पैसा लेना चाहता है ?"

"नहीं, मेरे मालिक ! नहीं, दिन भर मेहनत करता हूँ, तब संझा को मालिक के आगे हाथ पसारता हूँ।"

"बको मत ! मुक़ाबला करने चला है हमारा। क्यों, यह जी में है क्या कि बिना काम पर हाज़री दिये ही घर बैठे तलब मिल जाय। अच्छा, जाओ इसी वक्त काम छोड़ दो।" क्रोध में भरा हुआ जीवन दूसरी तरफ़ चला गया जहां दो मज़दूरनी पास पास बैठी अपनी गोद के बच्चों को दूध पिला रही थीं।

जीवन की बात को सुनकर घासी के नेत्रों से अश्रु बिन्दु गिरने लगे। घासी दरिद्र भले ही था पर उसमें स्वभिमान कम न था। नौका पर अपना बोझ लादकर उसकी बेटी रज्जो आ रही थी। वृद्ध पिता की आंखों से अश्रु बिन्दु गिरते देखकर वह ठहर गई और व्याकुल होकर उसने पूछा—"दादा रोते किस लिये हो।"

"अपने भाग्य पर।"

"यह लाड़ प्यार घर जाकर करना।" गरजते हुए जीवन ने कहा, जिसका ध्यान उन दोनों मज़दूरनियों ने घासी और रज्जो की ओर आकर्षित करा दिया था "तुम दोनों को यदि काम नहीं करना है तो कल से इधर न आना। मालिक का पैसा हराम का नहीं है।" जीवन यह कह कर आगे बढ़ गया। दोनों मज़दूरनियें विजय गर्व से भरी हुई अपने बच्चों को दूध पिला रही थीं। बूढ़ा अपने काम में फिर जुट गया। रज्जो भी जीवन के कठोर शब्दों पर मन मसोसती हुई पत्थर लाने के लिये चली गई।

दिन बीता संध्या आई। रज्जो दिन भर के परिश्रम के पश्चात् अपने बूढ़े दादा के साथ, झोंपड़ी की ओर चल दी। श्रमजीवियों के दल में इतना कठोर परिश्रम करने पर भी अपूर्व उत्साह था, जीवन था। कुछ गाते हुए जा रहे थे और कुछ हंसते हुए। स्त्रियों में से किसी के कन्धे पर उसका बच्चा लदा हुआ था और कोई अपने बड़े बालक का हाथ पकड़े जा रही थी। जिस दयनीय दशा से हमारे हृदय कांप उठें, उसमें भी वे सब श्रमजीवी प्रसन्न दिखाई देते थे

२

"दादा! गरीबों का क्या कोई भी सहायक नहीं?"

"बेटी! इस संसार में कोई नहीं।"

"फिर गरीबों को ईश्वर ने पैदा ही क्यों किया?"

"संसार के कष्ट उठाने और धनवानों की सेवा करने के लिये। ईमानदारी से सेवा करते करते भी उनका तिरस्कार सहने के लिये।"

'दादा! वह परमात्मा इतना भी नहीं कर सकता कि अपने पैदा किये गरीबों का भरपेट गुज़ारा होने का प्रबन्ध भी कर सके? अगर वह ऐसा नहीं कर सकता तो वह बड़ा अन्यायी है।'

'बेटी! उसके लिये ऐसा न कहो। वह अन्यायी नहीं बल्कि न्याय करने वाला है। यह तो हमारी समझ की भूल है। जो भी हम गरीब इस समय कष्ट उठा रहे हैं वह सब अपने किये का फल है। हमने पिछले जन्म में कोई भारी अपराध किया होगा। रज्जो पिछली बातों को भी यदि मैं छोड़ दूं तो भी इतना कह सकता हूँ कि इस जन्म में भी मैंने कोई अच्छा काम नहीं किया। मैं इतना निर्धन न

था, इतना दीन न था और न इतना भिखारी ही था।' बूढ़ा इतना कहते कहते रोने लगा।

'दादा! तुम रोते किसलिये हो?'

'रज्जो! पुरानी बातों का स्मरण करने से दिल भर आया था। हां! तो मैं कह रहा था कि मैं भिखारी न था। यौवन काल में सब कुछ मेरे पास था परन्तु दैवी आपत्तियां आईं और सब अग्नि में स्वाहा हो गया। पेट पालना भी कठिन हो गया। फिर भी ज्यों त्यों करके गुज़ारा करता रहा।' बूढ़ा फिर विह्वल हो उठा। रज्जो ने उसके अन्तःकरण को पहिचान लिया। पिता के हृदय पर भारी चोट थी। वह भिखारी था परन्तु उसमें हृदय था। वह मज़दूरी करता था परन्तु ईश्वर विश्वासी था। वह निर्धन था परन्तु मालिक की चाकरी करना धर्म समझता था। वह संसार वेदना से जर्जरित हो गया था परन्तु फिर भी वह संसार में रह रहा था।

रज्जो ने पूछा 'दादा क्या हम फिर धनवान न बन सकेंगे?'

बूढ़ा इस प्रश्न को सुनकर मुस्कराया। धनवान बनने की बात उसे स्वप्नवत् प्रतीत होने लगी। उसने मुस्कराते हुए शब्दों में रज्जो से प्रश्न किया 'हम धनवान होकर क्या करेंगे? परमात्मा की देन अपने हाथों से खोकर फिर धनवान बनना हमारे लिये कोरा सुपना है।'

'दादा! धनी बनकर हम सुख पायेंगे।'

'रज्जो! यदि हमारे भाग्य में सुख होता तो हम सुख पाते हुये, दुख का जीवन निताने के लिये विवश क्यों होते?

रज्जो ने बूढ़े दादा की बात का कोई उत्तर न देते हुए, आंगन

को बुहारना प्रारम्भ कर दिया। वही घर का समस्त काम, मज़दूरी से छुट्टी मिलने पर करती थी। रज्जो ने जिस दिन से होश संभाला, उस दिन से कष्ट के अतिरिक्त सुख के साथ एक दिन भी व्यतीत न किया था। उसकी मां उसे पांच वर्ष की अवस्था में छोड़कर मर गई थी। पिता ने उसका पालन पोषण किया।

रज्जो एक निर्धन श्रमजीवि की कन्या थी परन्तु रूप, सौन्दर्य की खान थी। उसके मोहक नेत्र आकर्षित करने वाले थे। उसके शरीर की गठन बड़ी मुग्ध करने वाली थी।

साधारण मज़दूरनी होते हुए रज्जो के मुख पर कुलीनता, आत्म सम्मान, गौरव और प्रतिभा की अनुपम ज्योति विराजमान थी। वह निर्जन बन में खिलने वाला पुष्प थी। परन्तु उस पुष्प की सुगन्धि अभी तक अज्ञात थी।

रज्जो ने बूढ़े दादा के लिये खाने पीने का प्रबन्ध किया। नित्य की मज़दूरी इतनी कम थी कि उन दोनों का कठिनता से ही गुज़ारा चलता था। यदि किसी दिन रुग्णता या निर्बलता के कारण घासी काम पर न जाता तो उस दिन और भी अधिक कठिनाई उठानी पड़ती।

३

सन्ध्या के ६ बज चुके थे। 'प्रकाश' सरिता की तरंगों को न जाने कितनी देर से बैठा हुआ निहार रहा था। वह प्रकृति का उपासक था। उसे विश्व-सौन्दर्य, आराध्यदेव की प्रतिमा तुल्य प्रतीत होता था। वह श्रमजीवियों को शिक्षा देने का काम करता था। 'जीवन'

उससे चिढ़ता रहता था। प्रकाश से उसकी झड़प भी हो जाती थी। प्रकाश श्रमजीवियों पर अत्याचार होते सहन न कर सकता था और जीवन किसी न किसी को बिना कष्ट और पीड़ा पहुँचाये दम न लेता था। समस्त श्रमजीवी उसे मानवरूप में भयंकर दैत्य समझते थे।

प्रकाश एक धनी परिवार से सम्बन्ध रखता था। राष्ट्रीय कामों में भाग लेने के कारण वह दो बार जेल भी जा चुका था। पिछले दिनों जेल में उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। उसकी बहिन तथा माता ने तो उसके जीवन की आशा ही छोड़ दी थी। परन्तु जेल से छूटने पर उसने अपना स्वास्थ्य सम्भाल लिया था। पर्वतीय जलवायु तो उसे इतना अनुकूल पड़ा कि उसका स्वास्थ्य पहिले से भी अधिक उन्नत होगया।

प्रकाश की रात्रि पाठशाला में वृद्ध, युवक, बालक सभी अक्षराभ्यास करने के लिये आते थे। रज्जो ने पहिले से ही अक्षराभ्यास किया हुआ था। प्रकाश की सहायता से उसने पढ़ने लिखने का और अभ्यास कर लिया था। यह अपने वृद्ध पिता घासी को मोटे अक्षरों की रामायण पढ़कर सुनाती थी।

४

रज्जो कई दिन से काम पर न गई थी। उस का वृद्ध पिता रोग शय्या पर पड़ा हुआ था। दवा दारू तो उसे कहां नसीब थी, केवल बकरी के दूध में प्रातः सायं वह एक जंगल की घास, जिसे किसी पहाड़ी श्रमजीवी ने बताई थी, पकाकर पिला देती थी। एक सप्ताह में घासी उसी से कुछ भला चंगा हो गया। हाथ में एक पैसा भी न रहने के कारण उसे शीघ्र ही मज़दूरी के लिये जाना पड़ा।

जीवन अपने मालिक के मुंह लगा हुआ था। मालिक उसको अपना परम प्रिय सहायक समझता था। जीवन निरक्षर भट्टाचार्य था। मज़दूरों का हिसाब भी पूरी तरह से न रख सकता था। मालिक ने इस काम के लिये उसे अलग, आठ रुपये मासिक का उर्दू मिडिल पास मुन्शी दिया हुवा था। मुन्शी ही सब हिसाब किताब रखता था।

जीवन बड़ा दुराचारी, शराबी था। अपने मालिक से उसे नशा पानी की कुछ सामग्री मिल जाती थी। जितना ही जीवन निकृष्ट था, उतना ही उसका मालिक भी दुराचारी था। देखा जाय तो मालिक को दुर्व्यसनी बना देना जीवन का ही काम था। प्रकाश इस बात को जानता था। उसे जीवन से भारी घृणा थी। वह मालिक को इतना अपराधी नहीं समझता था जितना जीवन को। जीवन श्रमजीवी स्त्रियों को पथ-भ्रष्ट करता था। प्रकाश इस बात की ताड़ना करता था।

कुछ समय से रज्जो, जीवन की कुदृष्टि का निशाना बनी हुई थी जीवन जिस समय भी अवसर पाता, रज्जो को प्रलोभन देकर फंसाने की चेष्टा करता। उससे हिलमिलकर बातें करने का प्रयत्न करता। अपने मालिक के पास ले जाने के उपाय निकालता। परन्तु उसके यह सब प्रयत्न निष्फल थे। रज्जो भले ही भिखारिन थी, साधारण मज़दूरनी थी परन्तु उसमें सतीत्व रक्षा का विचार विद्यमान था। जीवन को वह सदैव सशंक दृष्टि से देखती थी। उसकी अशिष्ठ व निर्लज्जता पूर्ण बातों को अनसुनी कर देती थी। यदि दुष्टता से जीवन कभी सामने पड़कर बातें करता तो रज्जो उसे फटकार देती थी।

घासी दो तीन दिन से बीमार पड़ा हुआ था। इस बार उसके बचने की कोई भी आशा नहीं रही थी प्रकाश घासी को दो चार बार

देख जाता था। उससे बूढ़े का मन बहलाव होता था। बूढ़ा उसे अपनी बीती बातें सुनाता और प्रकाश उन्हें बड़े ध्यान से सुनता। एक दिन बूढ़े ने प्रकाश को पास बिठाकर कहा "बेटा मैं मर जाऊंगा। मेरी बिटिया का तुम्हें ध्यान रखना है।"

"नहीं, दादा! अभी तुम नहीं मरोगे। तुम अपनी बिटिया का विवाह करके मरना।"

"प्रकाश की इन बातों से रज्जो के मुख पर लज्जा की रेखा दौड़ गई। उसके ओठों पर मन्द मन्द मुसकान दिखाई पड़ने लगी। बूढ़े ने लाड़ प्यार से पाली गई रज्जो से कहा—"बिटिया! अब तेरी देख भाल का भार इन पर है। इनकी आज्ञा का पालन करना। तेरी मां ने मरते समय तेरा भार मुझपर सौंपा था और आज मैं उस भार को इनपर छोड़ रहा हूँ।"

रज्जो ने वृद्ध पिता को सान्त्वना देते हुये कहा—"दादा! तुम ऐसी बातें काहे को करते हो? जल्दी ही भले चंगे हो जाओगे।"

"बिटिया अब मुझे एक पल का भी भरोसा नहीं। देखना अपने कुल की लाज रखना। मजदूरी करके पेट पालना पर सदाचार से कभी न गिरना।"

प्रकाश इन सब बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। रज्जो के प्रति उसके हृदय में प्रेम था। प्रकाश उसके सद्गुणों को बहुत दिनों से परख रहा था। बूढ़े की बातों से उसके हृदय में अनेकों प्रकार के संकल्प विकल्प उठने लगे।

चला गया। रज्जो ने बूढ़े दादा को दो घूंट पानी पिलाया। उसे थोड़ी शान्ति प्राप्त हुई और कुछ समय के लिये आंख मूंदकर सोगया।

५

प्रातःकाल की सुनहली किरणें नदी के स्वच्छ जल में पड़कर अपूर्व दृश्य उत्पन्न कर रही थीं। उस समय का पर्वतीय दृश्य बड़ा ही मनोरम प्रतीत होता था। प्रकाश एक बड़ी सी पाषाण शिला पर बैठा हुवा प्रकृति की शोभा देख रहा था। सहसा उसने देखा कि रज्जो पानी का घड़ा लिये उसी तट पर आ रही है। रज्जो ने नदी से जल भरा और वह घर की ओर जाने लगी। प्रकाश ने उसे रोक कर कहा "रज्जो! अब मेरा विचार अपने घर लौट जाने का है। मेरे यहां से चले जाने में तुम्हें कुछ दुःख तो न होगा?"

"बूढ़े दादा के भले चंगे हो जाने तक यदि आप मेरी सहायता करें तो मैं आपका उपकार मानूंगी।" रज्जो के इन शब्दों ने प्रकाश को असमंजस में डाल दिया। उसने रज्जो से पूछा—"मुझे फिर कितने दिन और ठहरना होगा?"

"यह कहना कठिन है। दादा के जीवन की अभी कोई आशा नहीं।"

"अच्छा! मैं और कुछ दिन ठहरूंगा। घर वाले याद करते हैं। बहुत दिन से मेरा उधर जाना न हो सका।"

"आपका हम लोग उपकार मानेंगे। आपकी सहायता से दादा अच्छे हो जायेंगे।"

इसी समय जीवन इस ओर आ निकला। रज्जो और प्रकाश को नदी के किनारे बातें करते देखकर उसे प्रकाश को बुरा भला कहने का अवसर मिल गया। उसने व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा "क्यों मास्टर साहब ! नदी के किनारे आज ये घुलमिल कर क्या बातें हो रही हैं ? आप तो बड़े धर्मात्मा हैं। इतना कहकर वह हंसा और फिर रज्जो को सम्बोधित करते हुये कहने लगा "क्यों रज्जो ! क्या मास्टर साहब से प्रेम पैदा कर लिया है ? ये मास्टर साहब अब यहां नहीं ठहरने वाले। आज ही मालिक से कहा जायगा कि इनका स्कूल उठा दिया जाय।"

स्वाभिमानी प्रकाश क्रोध में भर गया। उसने जीवन को काफ़ी फटकारा परन्तु फिर भी वह कुछ न कुछ बकवास करता ही रहा। स्कूल चले या न चले इसकी उसे चिन्ता न थी। वह तो श्रमजीवियों में जाग्रति पैदा करने के अभिप्राय से वहां आया था। उसके घर में रुपये पैसे की कौन कमी थी ? जीवन जैसे शायद उसके यहां पांच चार नौकर काम करते हों। ग़रीबों की सहायता करना, श्रमजीवियों को ज्ञान देना तथा गिरे हुओं को उठाना उसने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ था। इसी की साधना में वह अपना समय लगा रहा था और हर प्रकार का कष्ट सहन कर रहा था।

जीवन के मुंह से दुर्गन्ध आ रही थी। उसकी दोनों आंखें चढ़ी हुई थीं। उसने हाथ में एक लम्बी छड़ी ली हुई थी। पांव कहीं के कहीं पड़ रहे थे। ऐसी स्थिति में प्रकाश जीवन के मुंह नहीं लगाना चाहता था। रज्जो अपना घड़ा सिर पर उठाकर घर की ओर

चल दी। प्रकाश भी उसके पीछे पीछे चला गया। जीवन शराबियों की सी बकवास करता हुआ वहीं रह गया।

६

जीवन ने प्रकाश को कलंकित करने का षडयंत्र रचा। मिल मज़दूरों में उसे बदनाम करने लगा। वह प्रकाश और रज्जो का अनुचित सम्बन्ध बताकर प्रकाश के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न करता।

इतना ही नहीं उसने एक और नीचता पूर्ण कार्य किया। उसने प्रकाश के पिता को कई पत्र भिजवाये और उनमें स्पष्ट लिखा दिया कि एक मज़दूर की लड़की के प्रेम में फंसकर मास्टर प्रकाश अपना विवाह कर रहा है।

प्रकाश को अधिकांश व्यक्ति बड़ा सज्जन समझते थे परन्तु सभी विचार के मनुष्य होते हैं। कुछ ऐसा भी विश्वास करने लगे कि मास्टर साहब का आचरण दोषयुक्त हो गया है तभी तो वह रज्जो के बूढ़े पिता के यहां बार बार आता जाता है।

प्रकाश को ऐसे व्यक्तियों का समाधान करना कठिन हो गया। किसी के गुण की बात पर लोग देर में विश्वास करते हैं और दोषों को तुरन्त ज़बान पर ले आते हैं। उसके कई मित्रों ने उससे कहा "प्रकाश तुम्हें रज्जो के घर नहीं आना जाना चाहिये।"

प्रकाश असमंजस में पड़ गया। एक ओर उसने रज्जो को वचन दे दिया था कि वह उसके वृद्ध पिता की बीमारी में सहायता देगा और उसकी रक्षा करेगा। दूसरी ओर सांसारिक अपयश

मूर्त्तिमान रूप धारण करके उसे खाने को दौड़ने लगा। परन्तु उसने धैर्य व साहस को न छोड़ा और पवित्र भावना के साथ वह उस गरीब की सहायता करता रहा। उसके सामने एक ही लक्ष्य था—अपने कर्तव्य का पालन करना।

एक सप्ताह पश्चात् प्रकाश के माता और पिता दोनों ही वहां आ पहुँचे। उन्हें अपने बच्चे के सम्बन्ध में चिन्ता पड़ गई थी। एक ओर वे आशायें लगा रहे थे कि किसी धनी व्यक्ति की कन्या से विवाह करेंगे और दूसरी ओर उन्हें समाचार मिला, कि उनका प्रकाश भिखारी की लड़की के प्रेम पाश में पड़कर उसे पत्नि बना रहा है।

जीवन इस ताक में था कि ज्योंही प्रकाश के माता पिता वहां आवें त्योंही वह उन्हें पहिले अपने यहां ले जाय। वे कभी इससे पहिले वहां न आये थे। जीवन अपने इस विचार को पूर्ण करने में सफल हुवा। इधर उधर की न जाने कितनी मिथ्या बातें कह कर उनका हृदय पलट दिया। उन्हें विश्वास हो गया कि उनका प्रकाश बिगड़ गया। जीवन ने एक और चतुराई की। वह उनको प्रकाश के मकान पर न लेजाकर घासी के मकान पर ले गया। प्रकाश उसी समय रजनी के पिता को दवा देकर निकला था। द्वार पर माता पिता को देखकर वह अवाक् रह गया। पिता ने क्रोधित होकर पूछा "प्रकाश! तुम इस घर में क्या लेने आये?"

प्रकाश ने कोई उत्तर न दिया। शान्तभाव से खड़ा रहा। परन्तु जीवन बराबर कुछ न कुछ बकवास करता रहा "इन्हें इस मज़दूर भिखारी से क्या प्रयोजन?"

प्रकाश की ओर आगे बढ़कर उसके पिता ने फिर कड़े शब्दों में पूछा "प्रकाश ! तुमने करोड़पति घर में जन्म पाकर एक भिखारी की लड़की से क्यों प्रेम स्थापित किया ? तुमने अपने पिता के नाम को कलंकित कर दिया। अब केवल एक ही उपाय है कि तुम तुरन्त इस स्थान को छोड़ दो। उस आवारा लड़की के पीछे तुम अपना जीवन नष्ट न करो।"

रज्जो द्वार पर होते हुए वार्तालाप को सुनकर बाहर आगई थी। एक अपरिचित व्यक्ति के मुंह से "आवारा लड़की के पीछे जीवन बरबाद न करो" शब्द सुनकर वह व्याकुल हो उठी, मानो किसी ने उसके मर्मस्थल को तेज़ चाकू से काट डाला हो। वह ग़रीब थी परन्तु हृदय रखती थी। भिखारिन थी परन्तु उसमें भी आत्म-सम्मान विद्यमान था। मज़दूरी करती थी परन्तु स्वाभिमानता के साथ। वह साधनहीन थी परन्तु सतीत्व का तेज उसकी सम्पत्ति था। वह ग़रीब क्यों बनी है पूञ्जीपतियों के अत्याचार से। उसके पिता का सर्वस्व कहां लुटा ? संसार के ग़रीबों के रक्त को चूसने वाले धनिकों की चालाकी पर। रज्जो सरल थी, सुबोध थी और संसार की मायावी वासनाओं से दूर थी। 'आवारा लड़की के पीछे जीवन बरबाद न करो' दोहराते हुये रज्जो ने केवल इतना ही कहा "मैं एक ग़रीब की बेटी हूँ और आप धनिक।"

जीवन ने दो तीन बार "आवारा लड़की" शब्द दोहराते हुये कहा "आवारा नहीं तो क्या तू सीता दमयन्ती है ? दूसरे के पुत्र को तूने अपने जाल में फांसकर क्या नहीं किया।"

ग़रीब लड़की चुपचाप कड़े से कड़े शब्दों को सुनती रही।

जीवन की बातों पर प्रकाश क्रोध में भर गया। नया रक्त उसके शरीर में जोश मार रहा था। उसने जीवन की गर्दन पकड़ कर भूमि से लगा देने की चेष्टा की परन्तु उसके पिता ने उसका हाथ रोक लिया। प्रकाश ने जीवन को डांटते हुये कहा "तू अपने आपको बड़ा पवित्र समझता है। एक शराबी, व्यभिचारी का गुलाम होकर दूसरे की बहू बेटियों के सम्मान को कलंकित करता है?"

जीवन को कुछ भी साहस न हुआ। वह प्रकाश को धमकी देता हुआ "अब तेरी जान की खैर नहीं" वहां से चला गया।

रज्जो इसी बीच अन्दर चली गई थी। परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् बाहर आई। उसने प्रकाश से विनय पूर्वक शब्दों में याचना की। आप अन्दर आइये। दादा आपको पुकार रहे हैं। उनके बचने की अब कोई आशा नहीं।"

माता और पिता को वहीं खड़ा छोड़कर प्रकाश घर के अन्दर गया। बूढ़े ने उसकी ओर कातर दृष्टि से निहारते हुये कहा "प्रकाश बाबू! मेरे बचने की अब कोई आशा नहीं। अब मेरी बिटिया आपकी शरण में है। आपके अतिरिक्त अब इसका कोई दूसरा नहीं।"

इसी बीच प्रकाश के माता पिता भी अन्दर आ गये। बूढ़े ने रज्जो की ओर देखते हुये कहा "बेटी! अब प्रकाश बाबू ही तुम्हारे रक्षक हैं। इनकी शरण में ही तुम्हें भगवान के नाम पर छोड़ रहा हूं।"

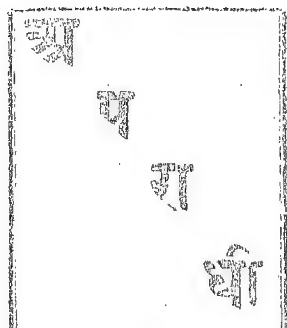
प्रकाश के पिता ने मरते हुये बूढ़े से क्रोध में भरकर पूछा "तो क्या तुझ भिखारी की लड़की से मेरा पुत्र विवाह करेगा?"

प्रकाश का हृदय विह्वल हो उठा। उसने समझ लिया कि उसके पिता का ध्येय पैसे के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वे नहीं जानते कि ग़रीबों में भी आत्मा का निवास है। प्रकाश ने बूढ़े की अंतिम अभिलाषा को पूर्ण करते हुये कहा "दादा! मैं तुम्हारी बेटी की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता हूँ। तुम सुख से मरो। अब इसकी कोई चिन्ता न करो।"

"भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे" इन शब्दों के साथ बूढ़े ने अन्तिम श्वास छोड़ दी।

७

कुछ समय पश्चात् प्रकाश के महल का रज्जो दीपक बन गई। उसने अपने सद्गुणों से प्रकाश के माता पिता को मोहित कर लिया। उसके घर में आने पर प्रकाश के पिता को कई लाख रुपये का व्यापार में लाभ हुआ। प्रकाश बाबू भी केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्य चुन लिये गये। उनका परिवार बड़ा सुखी था परन्तु प्रकाश बाबू कभी कभी अब भी अपनी पत्नि को "भिखारिन रजनी" सम्बोधन करके पुकार उठते हैं।



एक

वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी। जेल की कच्ची दीवारों में कहीं कहीं पानी भरने से गढ़े पड़ गये थे। दीवारों की मुंडेर की सफेदी भी वर्षा के पानी के कारण सब धुल चुकी थी। बैरक के अन्दर की दीवारों पर जहां जहां पानी बहकर आया था वहां अनेकों बड़े बड़े धब्बे पड़े हुए थे। दीवारों की जड़ों में जो कच्ची मिट्टी के पुश्ते बन्धे हुए थे वे भी कहीं कहीं से मिट्टी बह जाने के कारण टूट चुके थे।

जेल अधिकारियों ने मरम्मत और पुताई प्रारम्भ करा दी। हमारी बैरक में भी यह कार्य प्रारम्भ हो गया। चोरी डकैती और अन्य अपराधों के कैदियों की एक कमान प्रातःकाल होते ही आ जाती थी। उनके साथ एक नम्बरदार और एक वार्डर काम की देख भाल के लिये आता था। मुझे याद है नम्बरदार एक भला आदमी था। ग्राम में मारपीट हो जाने के कारण एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और उसी मुकदमे के सम्बन्ध में उसे ५ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड मिला था। वह घर का सम्पन्न व्यक्ति था, उसके यहां ३ हल की खेती होती थी। वह नम्बरदार बड़ी नम्रता का व्यवहार करता था।

वार्डर नाटे क़द का एक चञ्चल व्यक्ति था। दो मिनट बात करते हुए पचीस बार आँखें मटकाता था। उसके मुंह से जो गन्दे शब्द निकलते थे उनको कोई भद्र व्यक्ति सुनना भी पसन्द न करता था। वह कैदियों से काम लेने में बड़ा सख्त था और इस बात का यत्न करता था कि जल्दी से जल्दी काम समाप्त हो जाय चाहे कैदी को लेशमात्र भी विश्राम न मिले।

दो

दोपहर के एक बजे का पचासा (घण्टा) बज चुका था। कैदियों ने अभी अपना काम प्रारम्भ न किया था। क्योंकि अभी तक राज—कमान का इञ्चार्ज वार्डर लौट कर नहीं आया था। ११ बजे से एक बजे तक का समय विश्राम और भोजन आदि के लिये निश्चित होता है।

हमारी बैरक में काम करने वाले इस राज—कमान में एक बीस वर्ष का नवयुवक भी था। वह बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और गौरवर्ण युवक था उसके एक हाथ पर अंग्रेज़ी भाषा में उसका नाम मुनीर भी खुदा हुआ था। विश्राम के समय यह लोग कभी कभी अपनी बैरक में न जाकर वहीं रह जाते थे जहां उन्हें किसी काम पर लगाया होता था।

डेढ़ बजे के लगभग मियां वार्डर तशरीफ़ लाये। उन्होंने आते ही डाट डपट बतलाई—"अभी तक काम शुरू क्यों नहीं किया ?" उस नम्बरदार को भी फटकारा। यह सब कुछ होते हुए भी कैदियों ने कोई उत्तर न देकर सीढ़ी लगादी और अपना अपना काम प्रारम्भ कर दिया।

मुनीर के एक हाथ में सफेदी के पानी की भरी हांडी थी और दूसरे में पुताई करने की कूंची। सीढ़ी पर चढ़कर उसने दीवार की मुंडेर को पोतना प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार से अन्य कुछ कैदियों ने दीवार के पुश्तों को ठीक करने का काम प्रारम्भ किया। मियां वार्डर ने देखा कि राज-कमान के सभी कैदी ठीक प्रकार से अपने अपने काम में लग गये हैं तो उसने नम्बरदार से कहा—

"नम्बरदार देखो ये खाली न बैठने पायें। हमें जेलर साहब के पास ज़रूरी काम से जाना है।"

वार्डर के लिये बैरक का बाहरी दर्वाजा खोल दिया गया और वह दफ्तर की ओर चला गया। उसके जाते ही कैदी सब ढीले पड़ गये। कुछ ने हमारे बीड़ी पीने वाले साथियों से बीड़ी मांगनी शुरू की और एक दो बैरक में आकर ताश के खिलाड़ियों की चाल देखने लगे।

नम्बरदार बार बार काम करने की प्रेरणा करता था परन्तु वे यह कहकर—'नम्बरदार अभी लो, अभी शुरु करते हैं' रह जाते थे।

मुनीर अपने काम को बराबर कर रहा था परन्तु उसके मुंह से एक सुरीली आवाज़ आ रही थी। वह गा रहा था—"लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में"। उस जैसे एक शाही खानदान के कैदी ने इस ग़ज़ल को किसी समय लिखा था जो मुग़ल साम्राज्य से सम्बन्ध रखता था जिसका नाम इतिहास में बहादुर शाह के नाम से विख्यात है। हमारे एक साथी ने मुनीर को आवाज़ दी। वह चाहता था उस ग़ज़ल को उसके मुंह से सुनना। मुनीर सफेदी की कूंची लिये हुए सीढ़ी से नीचे उतर आया परन्तु इसी समय दर्वाज़ा खुलने

का शब्द सुनाई दिया। बात की बात में मियां वार्डर आ धमका और कड़कती हुई आवाज़ में कहा—

"क्यों बे हरामज़ादे ! ये तू क्या गा रहा था, अभी तेरी पेशी जेलर साहब के सामने किये देता हूँ।"

पेशी का नाम सुनकर मुनीर घबड़ा गया। अखलाक़ी कैदी पेशी हो जाना अपने लिये महान संकट समझते हैं। जेल में इसका आशय यह होता है कि उस कैदी ने जेल नियमों के विरुद्ध अपराध किया जिसके कारण उसे सज़ा मिलनी चाहिये। सज़ा में कैदी के दिन काट लिये जाते हैं जिसका अर्थ यह होता है कि उतने दिन की उसकी सज़ा और बढ़ा दी गई।

मुनीर ने गिड़गिड़ा कर कहा—'जमादार जी मैं फिर कभी नहीं गाऊंगा'।

हमारे उस साथी ने प्रयत्न करके जमादार को शान्त कर दिया जिसने मुनीर को नीचे बुलाया था।

तीन

उस दिन मुनीर बैरक के अन्दर पुताई कर रहा था। जमादार बढ़िया सिगरेट का धुआं उड़ा रहा था। ऐसे व्यक्तियों को सिगरेट मिल जाय तो वे बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। बी क्लास के बंदियों को घर से सिगरेट मंगाने का अधिकार था। हमारे कई साथी खूब सिगरेट पाते थे। कई की तो ज़िन्दगी चाय और सिगरेट में ही थी।

दोपहर का काम बंद करने के पश्चात् राज-कमान के कैदी अपनी रोटी लेने चले गये। कुछ देर पश्चात् वे बैरक में लौट आये। मुनीर कुछ अधिक देर में लौटा।

हमारे दो चार साथियों ने मुनीर को अपने पास बुलाया। मुनीर कुछ उदास सा हो रहा था। हमने उससे पूछा ' मुनीर आज तेरा क्या हाल है ?"

ठीक है ! आज घर के आदमी मुलाकात को आये थे। घर की बातें सुनकर ख्याल आ ही जाता है।"

हमारे साथियों ने मुनीर को अपने पास बिठा लिया और उससे उसके घर की बातें पूछनी प्रारम्भ कीं।

मुनीर ने बताया "मेरे वालिद (पिता) ने छोटेपन में ही शादी कर दी थी। मेरी औरत की उम्र तो सिर्फ पांच साल थी। लेकिन अब तो उसके दो बच्चे हैं। मैंने उसे कई मरतबा उसके बाप के घर पहुँचाया लेकिन वह दो चार दिन रहकर फिर वापिस आ जाती थी।"

हमारे एक साथी ने पूछा "तुम्हारा इसमें क्या हर्ज था। तुम्हारे पास ही तो वह रहनी चाहिये थी। तुम उसके बाप के घर क्यों छोड़ आते थे ?"

"यह गहरी बातें हैं। इन बातों के कारण तो मैं आज इस जेलखाने में बंद हूँ।"

"अच्छा वापिस आने पर क्या होता था ?"

"एक दिन मुझे गुस्सा चढ़ा हुवा था। मैंने छुरी से उस पर हमला किया। चाहता था कि उसका काम तमाम कर दूं लेकिन वह बच गई। उसने शोर मचाया और घर वाले आकर बीच में पड़ गये। फिर भी उसके कई जखम लगे। खून बहने लगा। मैं अपना सिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। मेरे दोनों बच्चे बिलबिलाने लगे।" इतना कहकर मुनीर चुप हो गया।

हमारे एक साथी ने पूछा "इसमें कोई रहस्य जरूर होगा ? अन्यथा अपनी औरत को कौन छुरी से मारता है। क्या उससे कुछ शिकायत थी ?"

इसी बीच एक दूसरे साथी ने कहा "मियां वह बदचलन होगी।"

मुनीर ने अपनी औरत पर इस प्रकार लाञ्छन आते देख उसके उज्ज्वल चरित्र की रक्षा की। वह कहने लगा "मेरी औरत बड़ी नेक थी, क़सूर मेरा ही था। मैं एक दूसरी औरत के प्रेम में फंस गया था। मेरी ख्वाहिश थी कि मेरी औरत अपने बाप के यहां रहने लगे और दूसरी औरत मेरे पास। मेरी औरत ऐसा नहीं चाहती थी। उसने घर में एक तूफ़ान पैदा कर दिया। मैंने कई बार उसे मारा पीटा लेकिन वह बराबर मुझे रोकती रही। मौका पाकर मैंने उसे ख़त्म कर देने का फैसला किया।"

एक साथी ने पूछा "अब तुम कौनसी औरत को चाहते हो ?"

"अभी काफी सज़ा काटनी है। कुछ नहीं कह सकता।"

"कितने दिन जेल में आये हो गये ?"

"एक साल।"

"एक साल काटकर तुम्हें अपनी गलती मालूम पड़ने लगी या नहीं ?"

"इन्सान का गुस्सा ऐसा ही होता है। जो कुछ भी मैंने किया वह गुस्से में आकर किया।" इतना कहकर मुनीर वहां से उठकर अपने काम में जा लगा।

चार

'जेलखाने में भी बहुत सी शिक्षा मिलती है' इस बात में कोई व्यक्ति विश्वास नहीं करता। सभी यह समझते हैं कि जो व्यक्ति चोरी के अपराध में एक बार जेल काट आता है वह पक्का चोर बन जाता है। डाके में एक बार पकड़े जाने वाला व्यक्ति पक्का डाकू बन जाता है। जेब कतरे को यदि जेल की हवा एक बार लग गई तो वह बात की बात में जेब कतरने की कला को और सीख आता है। इसी प्रकार से अन्य दोषों की बात कही जाती है। यह तो अपराध करके जेल जाने वाले व्यक्तियों की बात रही, अब तो राजनैतिक कैदियों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही धारणा बन गई है। जहां कांग्रेस की ओर से सरकार को ज़रा भी कुछ खरी खोटी बात सुनाई गई, तभी बहुत से व्यक्ति कहने लगते हैं 'जेल के बाहर इन लोगों को चैन नहीं'।

इन बातों में बहुत अंश तक सत्यता विद्यमान है। हमारे जेल में रहते हुए छोटे चमार चोरी के अपराध में पकड़ा गया। तीन मास की उसे सज़ा मिली। जेल के छूटते समय उसके एक दो साथियों ने पूछा 'कहो भाई छोटे, अब कितने दिन को जा रहे हो'।

'जब यहां अन्न जल ले आवे' कहकर वह जेल से छूट गया। परन्तु दो सप्ताह पश्चात् पता चला कि छोटे को फिर पुलिस ने चोरी के अपराध में जेल भेज दिया। इस बार उसके साथ दो तीन अन्य व्यक्ति भी पकड़े आये। इसी प्रकार और व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी समाचार मिलते रहते थे।

एक बार के जेल वाले को जेल के शब्दों में इकबारा पुकारते

थे। दो बार वाले को दुबारा और इसी प्रकार आगे के व्यक्ति तिबारा, चौबारा पुकारे जाते थे। कोई कोई कैदी तो इससे से भी अधिक बार वाला था। यह तो रही बिगड़ने वाले व्यक्तियों की बात। परन्तु कुछ ऐसे कैदी भी मिलते थे जो अनजाने फंस गये थे या क्रोध वश कोई अपराध कर बैठे थे। इन लोगों से वार्तालाप करने से पता चलता था कि वे पश्चात्ताप करते थे अपने किये पर।

मुनीर से हमें फिर एक बार वार्तालाप करने का अवसर मिला। वह कुछ बीमार हो गया था और जेल के अस्पताल में दाखिल था। हमें भी अस्पताल में जाना पड़ा। मुनीर की बातें काफ़ी समय से मस्तिष्क में चक्कर लगा रही थीं। हम बार बार सोच रहे थे कि इस नौजवान ने अपना जीवन क्यों नष्ट कर लिया। मुनीर से हमने उस का हाल चाल पूछा। उसने बताया 'पेचिश हो रही है, कुछ खून भी आता है।'

हमने पूछा "कहो अब घर वालों से कब मिलाई हुई ?"

"इस हफ्ते होने वाली है।"

"कौन मिलने आयेंगे ?"

"छोटा भाई, वाल्दा और मेरी औरत को लेकर मिलने आयगा।"

"कौन औरत ? वही जिसे तुमने अग़वा किया था ?"

"वही"

"दूसरी औरत नहीं।"

"उसने मेरा घर तबाह कर दिया। मेरे वालिद का सारा पैसा मुकदमे में खत्म करा दिया। घर वाले कर्ज़ा लेकर गुज़ारा कर रहे हैं।

बच्चे परेशान हैं। कपड़ा पहिनने को नहीं मिलता। पेट भर रोटी को भी मोहताज हैं। क्या मैं अब भी उसकी शक्ल देखूंगा ?"

"मियां हमसे क्या पूछते हो। तुम खुद फैसला करो।"

"मैंने फैसला कर लिया। अब उसकी शक्ल भी न देखूंगा।"

"और अपनी औरत के साथ कैसा बर्ताव करोगे ?"

"इन्सान का।"

"सच कहते हो ?"

"इसमें शक न कीजिये। मैं अपनी औरत से कहूँगा मैं कसूरवार हूँ। मैंने गुनाह किया। मेरी ज़िन्दगी बरबाद हो रही है। मैंने अपने घर वालों को भी बरबाद कर डाला।"

"मुनीर ! ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम जेल की रोटियों से घबड़ा गये। घर की याद आने लगी। थोड़े दिन जेल काटकर ही तुम्हें कष्ट मालूम पड़ने लगा। अभी तो तुम्हें बहुत दिन जेल में रहना है। आराम के साथ जेल काटनी चाहिए।"

"जेल में आराम किसे मिलता है। आप लोग तो देश के नाम पर आये हैं। आपके लिए तो जेल भी आराम की जगह बनी हुई है। जेल काटना तो हम जैसों का है।"

"फिर तुम लोग ऐसे काम करते ही क्यों हो ?"

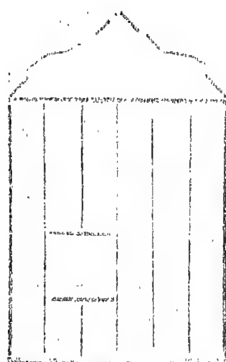
"यह सब कुछ किस्मत कराती है।"

"किस्मत को तुम लोगों के काम ही तो बनाते हैं। वह अपने आप तो नहीं बन आती।"

"यह सब ठीक है। कसूर मेरा ही था जो मैंने ऐसा किया।"

इतना कहकर मुनीर शोक में डूब गया। मैंने उससे एक बार फिर पूछा, "मुनीर ? क्या तुम अब अपने आप को सचमुच अपराधी समझने लगे ?"

"दर असल मैं अपराधी हूँ।"



१

"बहू की दशा दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही है। तुम्हें इतना भी नहीं सूझता कि किसी अफ़सर से मेल मुलाक़ात करके लड़के से मिल आओ। इसमें कौन बुराई है? पूरे पांच मास बीत गये, न कोई उसका पत्र आया है और न किसी से मिलाई हुई है। यदि तुम्हारे बस का इतना भी नहीं तो बहू को अकेली मिलने के लिये जाने दो। उसका भाई कई बार कह चुका कि मैं सुधा को लेजाकर मिलाई करा लाऊंगा।" इतना कहकर सुधा की सास उत्तर पाने के लिये अपने पति का मुंह ताकने लगी।

पं० जगमोहन ने गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया "चन्द्र की मिलाई के लिये कई बार प्रयत्न किया गया। परन्तु यही उत्तर मिला है— मिलाई बन्द है। उसने भी कहलवा दिया है कि तुम मेरे से मिलने के लिये किसी अफ़सर से सिफ़ारिश मत करना।"

"क्यों जी ऐसी क्या बात होगई? दो वर्ष से भी तो हम लोग हर महीने मिलने जाते थे। उसके पत्र भी बराबर आते थे। क्या जेल

वालों से कुछ झगड़ा हो गया ? मैं पहिले ही कहती थी कि लड़के को नज़र में रक्खो। तुमने एक बात भी न मानी।"

"तुम इतनी व्याकुल क्यों होती हो ? और भी तो माई के लाल जेल में पड़े हैं। लड़के किसी के रोके से रुकते हैं ? जब देश में सभी तरफ़ आग लग रही थी तो जिसका जी चाहा उस आग में कूद पड़ा। उस समय न मां के समझाये से काम चलता था और न पिता के कहने सुनने से। बड़े बड़े डिप्टी कलक्टरों के लड़के जेल चले गये। बड़े बड़े घरों की लड़कियां तक तो जेल गईं।"

"अच्छा ! अब आप अपनी इस राम कहानी को बन्द करिये और जैसे भी हो बहू को मिला लाने का प्रबन्ध करिये। घर में एक ही तो लड़का और उसकी तरफ़ से तुम्हारा इतना कठोर दिल।"

पं० जगमोहन पत्नि की फटकार को चुपचाप सुनते रहे। उन्हें स्वयं कुछ भी न सूझता था कि लड़के के लिये क्या करें। वह जानते थे कि क्रान्तिकारियों में उनका चन्द्र अगुआ बना हुआ था। ऐसे व्यक्तियों को सरकार कोई रियायत नहीं देना चाहती थी। सरकार के पास चन्द्र के विरुद्ध कितनी ही आपत्तिजनक रिपोर्टं पहुँच चुकी थीं। यदि सरकार को उनकी नौकरी का कुछ लिहाज़ होता तो वह पहिले ही इतनी लम्बी सज़ा क्यों करती। पं० जगमोहन ने उत्तर में इतना ही कहा "अच्छा लड़के से मिलने के लिए प्रयत्न किया जायगा।"

इसी बीच एक व्यक्ति ने पं० जगमोहन को आवाज़ लगाई। पंडित जी घर से बाहर आये। उस व्यक्ति ने एक छोटा सा पुर्जा देते हुए कहा "इसका उत्तर अभी लिख दीजिये। दो घन्टे पश्चात् जो गाड़ी छूटेगी उसमें बैठ कर वापिस जाना है।"

पंडित जी ने परचा पढ़ा और प्रसन्न होते हुए घर के अन्दर गये। पत्नि को सम्बोधन करके कहा "लो तुम्हारे चन्द्र का परचा आया है। आज मंगलवार का दिन है। इसी शुक्रवार के दिन उसकी मिलाई होगी। अब तुम बहू को लेकर कल रात को चली जाना। एक दिन पहिले पहुँच जाना और अच्छा होगा।"

सुधा की सास इस समाचार को सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। तुरन्त बहू को सूचना दी "कल रात की ट्रेन से चन्द्र से मिलाई करने के लिये मेरठ जाना है।"

२

जेल के फाटक पर खड़ी सुधा जमादार से बार बार पूछ रही थी "मेरी मिलाई की दरख्वास्त कहां गई? और लोग तो मुलाकात करने के लिये अन्दर चले गये। मेरा नाम अभी तक नहीं पुकारा गया।"

जमादार ने डाटकर कहा "तुम्हें दो मरतबा कह दिया गया—अभी तक तुम्हारी दरख्वास्त का कोई जवाब नहीं आया। सामने पेड़ के नीचे बैठ जाओ, जिस समय नाम पुकारा जाय, तब आ जाना।"

सुधा की आशाओं पर पानी पड़ रहा था। इससे पूर्व वह तीन बार निराश लौट चुकी थी। जेल नियमों का उल्लङ्घन करने पर तीन बार मुलाकात बन्द हो चुकी थी। उसका हृदय धड़क रहा था। उसने फिर साहस करके पूछा "जमादार! और लोग तो मुलाकात के लिये अन्दर चले गये फिर मेरा नम्बर कब आयेगा? एक बार जेलर साहब से फिर पूछ लो। कानपुर से इतना किराया खर्च करके हम लोग मिलने आये हैं।"

जमादार ने इस बार सान्त्वना देते हुए कहा "अच्छा ज़रा देर और इन्तज़ार करलो।"

दस पांच मिनट के पश्चात् आवाज़ लगी "चन्द्रपाल से मुलाकात करने वाले आ जांय।"

सुधा के मस्तक पर आशा की ज्योति जगमगा उठी। उसने फुर्ती के साथ अपनी छोटी बच्ची को उठाया। सास तथा भाई को साथ लिया और जेल के फाटक की खिड़की खुलते ही वे सब अन्दर चले गये।

लगभग बीस राजबंदी अपने परिवार वालों से वार्तालाप कर रहे थे। चन्द्र भी वहां विद्यमान था। सुधा को देखकर उसने कहा "आज भी तुम्हारी मुलाकात होनी कठिन थी। तुमने कई बार प्रयत्न किया इस लिये जेलर ने तुम्हारी मुलाकात करा दी।"

मां ने पूछा "भैया, ऐसा क्यों हो जाता है ? और भी तो बहुत से व्यक्ति हैं जिनकी मुलाकात बार बार होती रहती है। तुम्हारी मुलाकात क्यों बन्द हो जाती है ?"

"मैं अपने स्वत्वों की रक्षा के लिये जेल वालों से लड़ाई लड़ता रहता हूँ।"

"बेटा ! जेल से बाहर तो तू सरकार से लड़ाई लड़ता ही रहता था परन्तु यहां तो ऐसा नहीं करना चाहिये।"

इस प्रकार ये लोग अपनी बातें करने में व्यस्त हो गये। जेल का एक वार्डर जिसके हाथ में एक छोटा डंडा था, पेटी उतार कर जिसने अपने कन्धे पर डाली हुई थी, इधर से उधर प्रत्येक राजबंदी की गति विधि को देख रहा था। वह काफी सुलझा हुआ जमादार

था। न जाने उसने कितने वर्ष राजबंदियों की आंखें देखते देखते जेल में व्यतीत कर दिये थे।

इसी बीच एक दूसरा जमादार भी उधर आ गया। उसका रंग काला था। शरीर दुबला पतला था। चेहरा भद्दा था। स्थान स्थान पर चेचक के दाग़ पड़े हुए थे। हाथ में घड़ी बांधे हुए था। उसने आते ही पहिले जमादार को चेतावनी दी "जेलर साहब का हुक्म है कि मुलाकातियों पर कड़ी नज़र रक्खी जाय।"

इसी बीच उसने एक राजबंदी के हाथ में एक छोटा सा परचा देखा। उसे देखते ही वह पास गया और हाथ से परचा लेकर पूछा "ये क्या है? जेलर साहब से आपकी रिपोर्ट की जायगी।"

राजबंदी ने डाटकर कहा "देखते भी हो, वह है क्या? पहिले आंखें खोलकर पढ़ो।"

उसने परचे को बड़े ध्यान से पढ़ा। उसमें एक बात भी ऐसी न थी जो जेल नियमों के विरुद्ध हो। वह समझ रहा था कि परचा मुलाकाती द्वारा बाहर भेजा जायगा परन्तु उसमें केवल वह सामान लिखा हुआ था जो फाटक पर उस राजबंदी के लिये जमा हुआ था। जमादार परचे को लौटाकर वहां से चला गया।

मां ने पुत्र को समझाया "बेटा! अब से कोई ऐसी बात न करना कि पत्र या मुलाकात बन्द हो जाय।"

"मां! पांच वर्ष के लिये तुम्हें मुझे भुला देना चाहिये। देश के लिये मैं यहां ५ वर्ष के कारावास में हूँ। ऐसी दशा में मुझसे मिलने की आशा करना भी व्यर्थ है। जहां जेल से बाहर मुझे ब्रिटिश सरकार की दमन नीति का खण्डन करना था, वहां जेल में मुझे जेल अवि-

कारियों से संघर्ष करना पड़ता है। इसलिये मां तुम मेरी कोई चिन्ता न करना। यह तो मेरे लिये साधारण बात है कि मेरी मिलाई बन्द हो जाय या मुझे पत्र लिखने को न मिलें। तुम यह भी तो समझ लो कि इन जेलों में मानवता का कितना खून होता है। मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जाता। पशु से भी निकृष्ट दशा में कैदी को रखने का प्रयत्न किया जाता है। सरकार के कानून तोड़ने में जो सज़ा हमें दी गई है उसे तो हम लोग भुगतते ही हैं परन्तु उस सज़ा से भी ऊपर की सज़ा देने का जेल अधिकारी प्रयत्न करते हैं। न ठीक खाना दिया जाता है, न पढ़ने को पुस्तकें और न खेलने को आवश्यक सामान। बस ये लोग चाहते हैं कि हम सब जानवरों की तरह जेल की बैरकों में बन्द पड़े रहें। मैं इन सब बातों के विरुद्ध जेल वालों से संघर्ष करता हूँ। ऐसा करना मेरा कर्तव्य है। मां! कर्तव्य पालन के लिये ही तो मैं यहां आया हूँ। क्या तुम कर्तव्य पालन करने से रोकना चाहती हो?"

बेटे का लम्बा उपदेश सुनकर मां चुप हो गई। सुधा को चन्द्र ने अनेकों प्रकार का प्रोत्साहन दिया। वीर पत्नि के समान उसे स्थिर और निर्भय रहने की प्रेरणा की।

३

जेलर कांग्रेस के नाम से जलता था। राजनीति की बातें उसके शरीर को जर्जरित कर रही थीं। रंग गोरा था, पतला बदन था। क़द कुछ लम्बा था। शरीर सूखा हुआ था। फिर भी उसकी अकड़ का कुछ ठिकाना न था। राजनैतिक बंदियों को सफेद धोती और कमीज़ पहिने हुए देखकर उसे आग लगती थी। वह चाहता था कि जेल में

आने वाले सभी व्यक्ति साधारण कैदियों के समान घुटन्ना और आधा बांह का कुर्ता पहनें और सिर नंगा रक्खें। गांधी टोपी तो उसे तीर के समान लगती थी। किसी राजबंदी के पास वह साफ बिस्तरा भी न देख सकता था। किताबें तो उसके शरीर में बिच्छू के समान डंक मारती थीं।

पुस्तकों को देखकर वह यही टीका टिप्पणी करता था "जेल को इन लोगों ने कालिज बोर्डिंग समझा हुआ है।" खाने पीने के सामान को कभी जमा न होने देता था। रात दिन उसे गांधीवादी चुभते थे। सम्भव है वह स्वप्न में उनका ध्यान करके डर जाता हो।

कुछ वार्डरों का कहना था कि जेलर की पत्नि उसी समय से बीमार थी जब से जेल में राजनैतिक बंदी अधिक संख्या में आये थे। उसका बहुत सा इलाज किया गया परन्तु कोई लाभ न पहुँचता था। उसके सम्बन्ध में यह सुना जाता था कि वह जेलर से कहती थी "इन कांग्रेस वालों पर कोई सख्ती न की जाय" परन्तु जेलर कहता था "मुझे अपनी नौकरी रखनी है।"

जेलर पत्नि की बात नहीं मानता था किन्तु उल्टा ही आचरण करता था। राजनैतिक बंदियों का सामान जेल पर जमा होने के लिये प्रायः आता रहता था। यदि किसी ने लिहाफ और बिछौना जमा कराया तो बिछौना स्वीकार कर लिया और लिहाफ वापिस। यदि किसी महिला कैदी के लिये अंगीठी व कोयला जमा होने आया तो कोयला स्वीकार कर लिया और अंगीठी वापिस। यदि पेटीकोट व धोतियां आईं तो कभी धोती स्वीकार करली और पेटीकोट वापिस और कभी केवल पेटीकोट ही स्वीकार कर लिया। कपड़े सीने के लिये सुई और

धागा जमा हुआ तो सिर्फ धागा स्वीकार कर लिया और सुई वापिस। ऊन स्वीकार करली और बुनने की सलाइयां लौटादीं।

इन सब बातों पर बराबर झगड़े होते थे। महिला कैदी उसकी इन हरकतों से परेशान थीं। यह सब होते हुए भी जेल में वस्त्र सीने का सारा सामान पहुंचता था। ओढ़ने व बिछाने के सभी वस्त्र पहुँचते थे। लिहाफ शब्द से उसे चिढ़ थी तो रज़ाई शब्द लिखकर लोग जमा कराते थे। जेल में ही मिट्टी की अंगीठी बनाकर कोयलों का प्रयोग किया जाता था। और तो और लम्बी लम्बी बान की हुक्के की नलकी तैयार करके प्रतिदिन हुक्का पिया जाता था। नीम के पेड़ से लम्बी टहनियां काटकर उन्हें साफ करते थे और बान की बारीक बुनाई करके, कपड़ा मढ लेते थे, उसके पश्चात् टहनियां खींचकर बाहर निकाल दी जाती थीं और फिर हुक्के की नली तैयार होजाती थीं।

जेल वाले महीने में एक बार धावा बोलते थे। बहुत सा सामान उठाकर ले जाते। हुक्कों के तो वे शत्रु थे। तम्बाकू बराबर जमा होता था परन्तु हुक्के या चिलम जेल में न रहने देते थे।

जेलर के साथ नित्य संघर्ष चलता रहता था मिलाई के अवसर पर भी उसे चैन न मिलता था। चन्द्र की माता कुछ फल ले आई थी। जेलर से पूछा "जेलर साहब! ये थोड़े से फल मुझे अपने लड़के को देने हैं।"

उत्तर मिला "इजाज़त (आज्ञा) नहीं। बिना डाक्टर के दिखाये खाने पीने की कोई वस्तु नहीं ली जा सकती।"

बुढ़िया ने उत्तर दिया "क्या तुम्हारे घर बाल बच्चों को कभी फल नहीं आते? क्या तुम्हारे कोई बेटा बेटी नहीं?"

जेलर चुप हो गया परन्तु फिर भी फल लेने से इंकार ही किया।

चंद्र क्रोधित हो गया। परन्तु क्रोध से काम न बनता था। उस ने इतना ही कहा "जेलर साहब! आप हम लोगों के परिवार वालों के दिल को तो जख्मी न करो। इन फलों की मुझे इच्छा नहीं परन्तु मां के हृदय के प्रेम का मुझे ध्यान है।

जेलर फिर भी लज्जित न हुआ। परिणाम यह हुआ कि उसी अवसर पर चंद्र और जेलर के बीच काफी कठोर शब्दों का प्रयोग हो गया। जेलर ने चंद्र का जेल टिकट (विवरण पुस्तिका) मंगाया और क़लम लेकर लिख दिया "जेल अधिकारियों के साथ दुर्व्यवहार करने में पेशी होगी।"

मिलाई करने वाले व्यक्ति मिलाई का समय समाप्त होते ही बाहर चले गये। चंद्र ने मां को नमस्कार करते हुये कहा "अब अगले मास मिलाई के लिये न आना। इन जेल के ठेकेदारों को मां का पुत्र से, पत्नि का पति से, भाई का भाई से, पिता का पुत्र से मिलना अखरता है।"



एक

"यह मिल मेरे खून पसीने से ही तो खड़ी की गई है। इसे मेरे जैसे हज़ारों मज़दूरों ने अपना खून देकर बनाया है। इसकी चिमनियों का धुआं मेरे भाइयों की जलती लाशों का ही तो धुआं है। इसके प्रसादों में रंग रेलियां मेरे परिश्रम से कमाये धन पर ही तो होती हैं। ये बड़ी बड़ी विशाल इमारत मैंने ही तो निर्माण की हैं। और फिर भी मेरे बच्चे भूखे मरते हैं। शरीर ढाकने को वस्त्र नहीं। बीमार पड़ जाने पर कोई दवादारु को पूछने वाला नहीं। ये जीवन भी कोई जीवन है? जी चाहता है कि इसमें आग लगादूं। संसार इस की दहकती अग्नि को देखे और फिर अनुभव करे कि मज़दूर भी एक दिल रखने वाला प्राणी है।"

रतिया ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए दोहराया "जी चाहता है कि इसमें आग लगा दूं। क्यों! क्या पागल हो गया? पकड़ा जायगा। घर बरबाद कर लेगा। अब कहा सो कहा, देखना फिर कभी ऐसी बात मुंह से न निकालना।"

"रतिया! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि भूरे की बिटिया चार

दिन से चारपाई पर पड़ी तड़प रही है। बेचारी का बूढ़ा बाप पेट भरने के लिये काम पर चला जाता है और मां के बस का घर का काम भी नहीं। आंखों से उसे कम दीखने लगा। क्या तुम नहीं जानते कि तीन दिन के लगातार पानी पड़ने से हम लोगों के झोंपड़ों में पानी भर गया। बच्चे मलेरिया बुखार में पड़े तड़पते हैं? क्या तुम नहीं जानते कि बनिये का क़र्ज़ा चुकाते चुकाते पांच साल हो गये फिर भी खचेड़ू रात दिन क़र्ज़े के देने में पिसा जा रहा है? क्या तुमने अपनी आंखों से भुरिया को काम करते नहीं देखा? बेचारी एक टांग से लंगड़ी है। शरीर अस्थिपंजर हो गया परन्तु फिर भी सारे दिन काम में लगी रहती है। मालूम है उसे क्या मिलता है? सिर्फ चार आने के पैसे।" इतना कहकर कुंजा किसी गम्भीर विचार में निमग्न हो गया।

"कुंजा! आज तो तुम्हारी दशा पागलों जैसी हो रही है। क्या तू ही इन मिल मालिकों को ठीक मार्ग पर चलाने वाला बन गया? संसार ऐसे ही चलता है। कुछ लोग अत्याचार करने वाले होते हैं और कुछ सहन करने वाले। जा अपने काम पर जा।"

दोनों व्यक्ति बातें करते हुए काम पर चले गये।

दो

मिल के कार्य की साधारण देखभाल करने के लिये प्रायः ऐसे व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं जो मज़दूरों पर अपना पूर्ण प्रभुत्व रख सकें। रियाज़ एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने मालिक को प्रसन्न रखने के लिये सब कुछ करने को तैयार रहता था। उसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि कई मज़दूरों के काम करते करते मशीन में आ

जाने पर उसने लाश तक का पता न दिया। मज़दूरों के साथ कैसा भी पेचीदा मामला पड़ जाता तो रियाज़ ही लड़ मरकर सुलझा देता था। उसके दो तीन और भी सहायक थे। इनके अत्याचारों का कुछ ठिकाना न था परन्तु एक बात थी कि ये लोग कुछ मजदूरों को अपने कब्ज़े में भी रखते थे। किसी के दो चार रुपये बढ़वा दिये, किसी को वर्दी दिला दी और किसी को विवाह आदि के अवसर पर कुछ इनाम के तौर पर दिलवा दिया। इन सब बातों से जहां साठ प्रतिशत मज़दूरों का ये लोग गला कटवा देते थे वहां चालीस प्रतिशत को नाममात्र का लाभ भी पहुँचा देते थे।

मिल-मालिक के यहां प्रायः बाहर के बहुत से व्यक्ति मिल देखने चले आते थे। मालिक के लड़के प्रेमनाथ के पास कभी कभी दो तीन अमेरिकन फौजी भी आ जाते थे। कर्नल जसवंतसिंह ने इन लोगों का परिचय करा दिया था। ये लोग प्रायः भारत की राजनीति की चर्चा करते रहते थे। पं० जवाहरलाल नेहरु से इन लोगों का कुछ परिचय था।

दोपहर के ३ बज चुके थे। ये लोग प्रेमनाथ के साथ दफ़्तर के पास के कमरे में बैठे चाय पी रहे थे कि अचानक उन्हें मज़दूरों के शोर करने का शब्द सुनाई पड़ा। प्रेमनाथ ने बाहर निकल कर देखा कि दस बीस मज़दूर कार्यालय की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। सारी मिल में शोर मचा हुआ है। मिल के पहरेदार मज़दूरों को हटाने में डंडा भी चला रहे थे।

प्रेमनाथ पूंजी के नशे में पागल रहता था। उसे न किसी मज़दूर से कोई सहानुभूति थी और न अपने देश से कोई प्रेम था।

मज़दूरों को पास आजाने पर डाटते हुये कहा "तुम लोग शैतानी करोगे तो अभी मारते मारते तुम लोगों की खाल उड़ा दी जायगी।"

इन मज़दूरों में कुंजा भी सम्मिलित था। प्रेमनाथ के शब्दों ने उसे पागल बना दिया। उसने आगे बढ़कर पूछा "आपने कैसे समझ लिया कि हम लोग शैतानी करने के लिये आये हैं?"

"तुम्हारी शक्ल से दिखाई पड़ता है।"

"हमारी शक्ल से दीखता है? हम शैतान हैं? आप देवता हैं? ठीक है गरीब और अमीर में यही अन्तर होता है। गरीब शैतान है, अमीर देवता।" इतना कहकर कुंजा प्रेमनाथ के उत्तर की प्रतिज्ञा करने लगा।

इसी बीच मिल में खतरे की घंटी बजी। हज़ारों मज़दूर बात की बात में मिल से बाहर निकल आये। किसी को कुछ पता न था कि ऐसा क्यों हो रहा है।

प्रेमनाथ इस गम्भीर स्थिति को देखकर घबड़ा गया। चुपचाप कमरे में चले जाने से काम न चलता था। मज़दूरों के जोश को समझकर उन्हें शान्त रखना सरल काम न था। इससे पूर्व वह कई बार स्थिति को खराब कर चुका था। उसके पास केवल एक ही उपाय था कि टेलीफ़ोन करके पुलिस की सहायता प्राप्त करले। उसने ऐसा ही किया। कमरे में अन्दर जाकर उसने सुपरिन्टेन्डेन्ट को फ़ोन किया

पुलिस के आने के पूर्व दो मज़दूर बुरी तरह से जख्मी हो चुके थे। एक का सिर फट गया था और दूसरे के एक हाथ की हड्डी टूट गई थी।

रियाज़ को कुछ मज़दूरों ने पकड़ा हुआ था। मिल के पहरेदार व कुछ अधिकारी उसे छुड़ाने का यत्न कर रहे थे परन्तु मज़दूरों की उत्तेजित भीड़ के सामने वे सब असमर्थ थे। भीड़ दफ़्तर के सामने रुकी हुई थी और मालिक को बाहर आने के लिये विवश कर रही थी।

कुंभा ने गर्जती हुई आवाज़ में पूछा "क्या हम मज़दूरों की बात सुनने के लिये आपको समय नहीं? हमारे खून पर खड़ी की गई इन इमारतों में क्या इसी प्रकार अत्याचार होते रहेंगे? देखते नहीं रियाज़ ने कितने व्यक्तियों का सिर फोड़ दिया।"

अब की बार प्रेमनाथ बाहर निकल आया। उसके साथ कर्नल जसवंतसिंह और अमेरिकन फौजी भी बाहर आ गये। प्रेमनाथ ने मज़दूरों को पीछे हटाने का प्रयत्न किया। इसी बीच पुलिस भी घटना स्थल पर आ पहुँची।

पुलिस ने मज़दूरों को हटाने के लिये लाठी चार्ज किया। कुछ मज़दूरों को पकड़कर लारियों में भर लिया। कुंजा और उसके साथी भी पकड़े गये। मज़दूर काम पर न जाकर मिल से बाहर चले गये।

तीन

छः दिन तक मिल के मज़दूर काम पर न आये। इन लोगों ने निश्चय कर लिया कि जब तक मिल में होने वाले अत्याचारों की खुली जांच न होगी तब तक वे लोग काम पर न आयेंगे। मज़दूरों के साथ मिल में दूसरे काम करने वालो ने भी सहानुभूति प्रगट की। फलस्वरूप मिल मालिक बड़ी परेशानी में पड़ गये। स्थिति को संभालना उनके लिये कठिन हो गया।

मज़दूरों की ओर से मांग की गई कि उनके साथियों को छोड़ा जाय, परन्तु ज़िला अधिकारियों ने ऐसा करना शान्ति के लिये खतरा समझा।

मिल मे लगातार बारह दिन तक काम न होने पर मालिक को कुछ होश आया। उसने मिल के प्रत्येक विभाग के कुछ मज़दूरों को बुला बुलाकर समझाया। कुछ को वेतन बढ़ा देने का भी प्रलोभन दिया परन्तु मज़दूर अपने भूखे साथियों के प्रति विश्वासघात न करना चाहते थे। उन्होंने काम पर आने से पहिले अपने साथियों के छोड़े जाने, रियाज को मिल की नौकरी से हटा देने की मांग की।

प्रेमनाथ को कोई उपाय न सूझता था कि वह किस प्रकार मिल चालू करे। उसे जंच गया कि अब मज़दूरों से बिगाड़कर यह एक दिन भी मिल नहीं चला सकता। मिल के मज़दूर बात बात पर प्रतिशोध लेने की भावना रखते हैं।

ज़िला मैजिस्ट्रेट पर काफी दबाव पड़ रहा था कि वह मज़दूरों को काम पर लगवा दे। उसे मज़दूरों से कोई सहानुभूति न थी। केवल बदलती दुनिया के कारण वह ऊपर से मज़दूरों का हितैषी बनकर बातें करता था। उसने कुछ मज़दूरों को बुलाया और उनसे वार्तालाप किया। उसने पूछा "तुक लोग काम पर क्यों नहीं आते ?"

मज़दूर "हमारी मांग पूरी करादी जांय।"

मैजिस्ट्रेट "तुम लोग क्या चाहते हो ?"

मज़दूर "कुंजा और अपने अन्य साथियों का जेल से छुटकारा।"

मैजिस्ट्रेट "और क्या चाहते हो ?"

मज़दूर "मिल में जितने दिन हड़ताल रही है, उसका पूरा वेतन। रियाज़ को मिल की नौकरी से हटाकर उसकी जांच हो और उसकी शरारत के लिये उसे दंड दिया जाय।"

मैजिस्ट्रेट "रियाज़ से तुमको क्या शिकायत है ?"

मजदूर "रियाज़ के अत्याचारों से मिल के सभी मज़दूर पीड़ित हैं। बहू बेटियों तक की इज्जत उसने ख़राब की है। वह जब तक इस मिल में काम करेगा, हम काम न करेंगे। रियाज़ मालिक का पिट्ठू है। मालिक इसके संकेत पर काम करता है।"

मैजिस्ट्रेट ने मज़दूरों को सान्त्वना देते हुये कहा "हम रियाज़ के विरुद्ध क़ानूनी कार्यवाही करेंगे। पुलिस उस पर मुक़दमा चलायेगी। परन्तु तुम लोग काम पर आ जाओ। तुम्हारे समस्त साथियों को भी छोड़ दिया जायगा।"

इसी बीच रतिया वहां आ पहुँचा उसने मैजिस्ट्रेट को सम्बोधन करते हुये कहा "हजूर कुछ हमारी बात भी सुनी जाय।"

मैजिस्ट्रेट ने कहा "कहो तुम क्या चाहते हो ?"

रतिया "मैं चाहता हूँ कि इन मिलों की चिमनियों का निकलता धुआं सदा के लिये बंद हो जाय।"

मैजिस्ट्रेट "इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ?"

रतिया "हम मजदूर तो और कहीं मजदूरी करके अपना पेट भर लेंगे परन्तु हमारे परिश्रम की कमाई से जो रंगरेलियां की जाती हैं, वे सदा के लिये बंद तो हो जायंगी।"

मैजिस्ट्रेट ने रतिया को सावधानी के साथ बातें करने का आदेश दिया। उसने कहा "तुम लोग अपनी बात करो। मिल बंद

कर दी जाय या चलती रहे इसका निर्णय तुम नहीं करोगे।"

रतिया "हम ही तो इसका निर्णय करना चाहते हैं।"

मैजिस्ट्रेट "यह सम्भव नहीं। तुम यदि काम पर न आओगे तो और लोग काम पर आ जायेंगे।"

रतिया "हुजूर यही तो बात है जिसे हम आपसे बताना चाहते हैं। ये बड़े २ आदमी अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का पेट काट सकते हैं परन्तु मज़दूर किसी दूसरे मज़दूर का पेट नहीं काटेगा। बाहर से आने वाले मज़दूरों को हम समझायेंगे और कहेंगे कि वे हमारा पेट काटकर मिल की नौकरी न करें।

मज़दूरों की इस प्रकार की बातों को सुनकर मैजिस्ट्रेट भी अपना कोई अन्तिम निर्णय न कर सका। मज़दूरों में जागृति उत्पन्न हो रही थी। उनमें अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने की बुद्धि उत्पन्न हो रही थी। वे अपने हानि लाभ को समझने लगे थे। मैजिस्ट्रेट मिल मालिक से वार्तालाप करने के पश्चात् वापिस चला गया। इस समय कोई भी निर्णय न हो सका।

चार

कुञ्जा एक छोटे से क्वार्टर में अपने परिवार को रखकर जीवन निर्वाह करता था। एक छोटा लड़का, दो बड़ी लड़कियां और एक उसकी पत्नी ये सब प्राणी उसकी कमाई पर आश्रित थे। क्वार्टर कच्ची पक्की ईंटों का बना था। ऊपर फूस का छप्पर पड़ा था एक कोठा पटा हुवा था। छप्पर में ही उसका खाना बनता था। एक कोने में छोटी सी चक्की रक्खी रहती थी और उसके पास पांच सात बरतन।

कुञ्जा को बड़ी लड़की के विवाह की चिन्ता रहती थी। लड़की चौदह वर्ष की हो चुकी थी। कुञ्जा का पिता तो उसका विवाह दस ग्यारह वर्ष की आयु में ही कर देना चाहता था परन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका था। इन बच्चों की शिक्षा का कोई भी प्रबन्ध न था। पैंतीस रुपये की नौकरी में कुञ्जा अपने परिवार का ज्यों त्यों करके पेट ही पाल पाता था। फूटी कौड़ी भी बचने की गुञ्जायश न थी। परन्तु कुञ्जा की पत्नी थोड़ा बहुत काम करके पांच सात रुपये जमा कर लेती थी। उसे चिन्ता थी कि स्यानी लड़की हो रही है, चार पैसे हाथ में होने ही चाहियें।

इस ग़रीबी की दशा में पूरे पन्द्रह दिन तक कुञ्जा को जेल में पड़े रहना पड़ा। उसकी पत्नी को बराबर आश्वासन दिया गया कि जितने दिन कुञ्जा जेल में रहेगा, उसका वेतन मिलेगा।

पन्द्रह दिन के पश्चात् कुञ्जा जमानत पर छूटकर आया। घर पर आकर उसने देखा कि एक समय के भोजन का भी घर में कोई सहारा न था। इस ग़रीबी की दशा को देखकर उसके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। उसने पत्नी से कहा "अब तक हम लोग मज़दूर रहकर अपने आपको इन मिलों में पीसते रहे परन्तु अब जी चाहता है कि काम को छोड़ दूं। इन मिलों के मालिकों में मज़दूर के कष्ट को सुन लेने का भी अवकाश नहीं। इन मिलों में रात दिन मानवता पिसती है। मैं चाहता हूँ अपना बलिदान देकर मानवता की रक्षा करूं।"

रतिया ने इसी समय प्रवेश करते हुये कहा "कुञ्जा! बलिदान देकर मानवता की रक्षा करने का स्वप्न छोड़ दे। देख कल से काम पर चलना है। गृहस्थी चलानी है तो तुझे मिल में काम करना होगा।

तुमने क्या संसार भर के मज़दूरों का ठेका लिया है। समझ लो कुञ्जा! यदि मज़दूरों के कष्ट के दिन समाप्त होने वाले हैं तो उसके लिये संगठित संग्राम सभी को करना होगा। अकेला कुंजा उसमें कुछ नहीं कर सकेगा।"

"रतिया! तुम ठीक कहते हो परन्तु क्या तुमने मेरे परिवार की दशा नहीं देखी?"

"कुंजा! एक तुम्हारे ही परिवार की कौन बात? भारत के तुम्हारे जैसे न जाने कितने परिवार इसी स्थिति में अपने दिन गुज़ारते हैं। इन बड़े बड़े पूंजीपतियों से अभी कुछ दिन और इसी प्रकार काम निकालना होगा।"

"रतिया! अब संतोष और सहन की सीमा नहीं रही।"

दोनों मज़दूर देर तक इसी प्रकार वार्तालाप करते रहे। इसी समय उनके पास एक व्यक्ति आया और कुंजा को एक छपा काग़ज़ देकर चला गया। रतिया ने पूछा "काग़ज़ में क्या लिखा है?'।

"मज़दूरों में क्रान्ति। वह दिन निकट है जब संसार में मज़दूरों का राज्य होगा।" कुंजा इन शब्दों के साथ छपा परचा सुनाता रहा।

गोली काण्ड

१

सितम्बर का महीना था। वर्षा समाप्त हो चुकी थी, परन्तु कभी कभी बादल घिर आते थे। उनका रंग ऐसा न होता था जैसा जुलाई और अगस्त के बादलों का। अगस्त के दूसरे सप्ताह में तो बादलों ने तूफ़ान मचा दिया। चारों ओर से काले काले बादल उठे, आपस में टकराये और मूसलाधार वर्षा के रूप में बरस कर वायु में विलीन हो गये।

उस दिन वायु बन्द थी, सायंकाल का समय था, सूर्य पश्चिम में डूबने के लिये ऊंचे आकाश से नीचे उतर आया था। हम भी इस आशा में खड़े थे कि जेल बन्दियों के लिये लाई गई कुछ आवश्यक सामग्री जेल के फाटक पर जमा करा दें। परन्तु सुनता कौन था? आज से ३ वर्ष पहिले की बातें विश्व के रङ्गमंच के कुछ पात्रों के लिए खिलवाड़ बनी हुई थीं। उनमें मानवता का कोई भी चिन्ह प्रकट न होता था। परन्तु फिर भी संसार गति कर रहा था। सृष्टि का नियम तो यह बताया जाता है कि विश्व से मानवता का

नाता विच्छिन्न हो जाने पर एक नई सृष्टि की रचना होती है। परन्तु यह सिद्धान्त उस समय लागू न होता था। इसका कारण कुछ सूखी हड्डियों में मानवता की चिनगारी सुलगना ही कहा जा सकता है। हम मानव-जगत की कल्पना में कुछ क्षण के लिए विचरण कर रहे थे कि सहसा हमारा ध्यान संतरी की ओर गया। कड़कती आवाज़ में सन्तरी ने कहा 'क्यों बे तांगेवाले, तांगा वहीं पीछे क्यों नहीं रोका?'

तांगेवाले को कोई उत्तर देने की आवश्यकता न पड़ी जब कि तांगे में से दो लाल दुपट्टे वाले सिपाही उतरे और सन्तरी चुप से क़दम बढ़ाकर आगे चला गया।

तांगे में से एक छोटा बालक, जिसकी आयु केवल १२ वर्ष होगी, मुसकराता हुआ उतरा। वह अपने दोनों हाथों से एक छोटी लाठी पकड़े हुए था। वह केवल एक टांग से चल सकता था। उसकी दूसरी टांग में पट्टी बंधी थी। बालक के चेहरे पर मन्द मुसकान थी। मस्तक से गम्भीरता और वीरता का भाव झलकता था। बालक में गम्भीरता हो, यह आश्चर्य की ही बात है। जेल के फाटक पर दो सिपाहियों के साथ उस बच्चे का आना कौतूहल का कारण बन गया। किसी ने पूछा 'बच्चा जेल पर किस लिये लाया गया है?'

उत्तर कुछ न मिला। उस समय किसी बात का भेद देना आपत्तिजनक बात थी। राजनैतिक मामलों को पूर्ण रूप से गुप्त रक्खा जाता था। परन्तु पूछने वाले भी पूछ ही लेते हैं। पता चला बालक के पैर में बन्दूक की तीन गोलियां लगी थीं। मरहमपट्टी की गई और अब अच्छा होने पर उसे जेल भेजा गया।

'उसका अपराध ?'

'बग़ावत ।'

'और ?'

'और पुलिस पर आक्रमण ।'

२

उस दिन होली का त्योहार था। जेलख़ाने की होली अपना महत्व अलग ही रखती है। वैसे तो वहां भी रंग की कमी न थी। बैरक में गाने के लिए कौन रोकने वाला था और परस्पर मिलने में भी कोई बाधा न थी। जेल के विशेष नियमों के अनुसार राजनैतिक बन्दियों को एक बैरक से दूसरी बैरक में जाकर मिलने की भी छूट थी। बन्दियों को अपने साथियों से मिलने और वार्तालाप करने में ऐसा आनन्द प्रतीत हो रहा था मानों वे अपने गांव के पास वाले किसी दूसरे गांव के भाइयों से होली मिल रहे हों। एक सीमित परिधि के अन्दर ऐसे मिलन को इतना महत्व तो मिलना भी चाहिये।

हमने देखा सितम्बर मास में जेल के फाटक के बाहर मिलने वाला बालक आज हमारे नेत्रों के सामने खड़ा था। कुछ साथी उसे देखकर अपने बच्चों की याद कर रहे थे और कुछ अपने छोटे भाइयों के स्नेह का ध्यान ला रहे थे।

हमारे एक साथी ने पूछा 'लालसिंह प्रसन्न तो हो ?'

'अत्यन्त प्रसन्न ! प्रसन्न न होने की कौन बात है ?'

'घर तो याद नहीं आता ?'

'घर याद क्यों आये ? मैं यहां घर से भी अधिक प्रसन्न हूँ ।'

'और यहां की रोटी ?'

'बड़ी स्वादिष्ट ।'

'मोहल्ले के साथी ?'

'यहां भी बहुत से साथी हैं ।'

इसी प्रकार उस वीर बालक के साथ देर तक बातें होती रहीं। दूसरे एक साथी ने पूछा, "क्यों भाई इतना छोटा यह लड़का यहां जेल में कैसे आ गया ?"

उस बच्चे से परिचित दूसरे साथी ने उत्तर दिया, "गोली काण्ड में ।"

हमारे पहिले साथी ने पूछा, "क्यों भाई ! तुम्हारा उस गोली-काण्ड से क्या सम्बन्ध था और तुम उसमें किस तरह से पकड़ लिये गये ?"

लालसिंह ने उत्तर दिया "जिस समय नगर से जलूस निकाला गया, मैं उसमें सम्मिलित था। मेरे साथ और भी लड़के थे। जलूस जब काफ़ी दूर चला गया तो पुलिस ने लाठी चलाई और फिर कुछ देर बाद ही गोली चला दी। बहुत से आदमी भागे। मैं भी उनके साथ भागा, परन्तु भागते समय मेरे पैर में गोली लगी। मैं वहां पर गिर पड़ा।"

"इसके पश्चात् क्या हुआ ?"

"मुझे उठाकर अस्पताल ले गये। किसी भी आदमी को मुझसे बातें न करने दी जाती थीं। एक सिपाही मेरे पास बैठा रहता था। वह देख-भाल करता था। कोई तीन सप्ताह मैं अस्पताल में पड़ा रहा।

जब पैर की गोली निकाल दी गई और ज़ख्म कुछ ठीक होने लगा तो मुझे जेल भेज दिया गया।"

"क्या तुम्हारी ज़मानत नहीं ली ?"

"इसका मुझे पता नहीं।"

तुम्हारे पिता क्या काम करते हैं ?"

"उन्हें मरे ६ वर्ष हो गये।"

वार्तालाप को इस प्रकार काफ़ी समय बीत गया। जेल वार्डर ने सभी कैदियों को एकत्रित होकर अपनी बैरक में वापिस चलने को कहा। होली मिलकर समस्त साथी अपनी बैरक में वापिस चले गये।

३

उन दिनों ज़िला मैजिस्ट्रेट एक हिन्दुस्तानी व्यक्ति था। उसे अपने देश से कुछ प्रेम था। राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलते समय उसे कुछ पीड़ा अनुभव होती थी। परन्तु वह एक आई० सी० एस० था। उसके सामने हज़ारों रुपये वेतन का प्रश्न था। उन दिनों किसी के साथ कोई रियायत करना अपनी नौकरी पर आफ़त बुलाना था। इस कारण मैजिस्ट्रेट सिवाय सरकारी आज्ञाओं के पालन करने के कुछ भी न कर सकता था।

जेल नियमों के अनुसार ज़िला मैजिस्ट्रेट प्रति मास एक बार जेल का निरीक्षण करता था। नियमों के अनुसार तो उसे प्रत्येक कैदी की बात सुनना आवश्यक था चाहे वह साधारण कैदी हो या राजबन्दी। परन्तु उन दिनों कैदी की बात का सुनना सुनाना कुछ न था। जेलर के साथ बैरक में एक तरफ़ से प्रवेश करके दूसरे दरवाज़े

से निकल जाना ही ज़िला मैजिस्ट्रेट का जेल निरीक्षण कर लेना था।

ज़िला मैजिस्ट्रेट ने जेल निरीक्षण करते समय देखा कि एक बारह तेरह वर्ष का बालक भी कैदी के रूप में खड़ा हुआ है तो उसकी दृष्टि उस बालक पर विशेष रूप से पड़ी। उसने जेलर से पूछा "क्यों जेलर साहब! यह बच्चा किस जुर्म में आया है?"

इस प्रकार के कैदियों के बारे में जेलर आदि पूरी जानकारी रखते ही हैं, उसने उत्तर दिया "...... .... गोलीकाण्ड में पकड़ा गया था।"

आश्चर्य के साथ ज़िला मैजिस्ट्रेट ने पूछा "इसने क्या अपराध किया था?"

उसी समय जेलर ने लड़के से उसका टिकट ले लिया। जेल के नियमानुसार प्रत्येक कैदी का टिकट पर विवरण लिखा होता है। उस पर लिखा रहता है कि वह किस अपराध में किन किन धाराओं के अनुसार जेल में आया।

मैजिस्ट्रेट ने जब यह पढ़ा कि वह लड़का पुलिस के कार्य में हस्तक्षेप तथा बलवा करने के अपराध में जेल लाया गया है तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आश्चर्य की बात भी थी। जहां पुलिस वालों पर लम्बी लम्बी लाठियां हों, जहां पुलिस वालों पर बन्दूकें हों, वहां एक बारह तेरह वर्ष का बच्चा उनके काम में हस्तक्षेप करे और बलवा करे इससे अधिक और क्या आश्चर्य हो सकता था। स्वतन्त्र देश में ऐसे बच्चे को कहां रक्खा जाता, यह बात तो स्वतन्त्र देश वाले ही जान सकते हैं। यहां तो ऐसे साहसी बच्चों को जो

निर्भयता के साथ सीना खोलकर आगे बढ़ें, गुलाम समझकर दोषी ठहराया जाता है।

ज़िला मैजिस्ट्रेट ने दो तीन बार ऊपर से नीचे तक उस बच्चे को देखा। उसने जेलर से कहा "इस लड़के के समस्त काग़ज़ दफ्तर में हमारे सामने रक्खे जांय।"

ज़िला मैजिस्ट्रेट ने मुसकान के साथ लालसिंह से पूछा "क्या तुमने पुलिस पर लाठी चलाई ?"

"नहीं।"

"और तुमने क्या किया ?"

"भारत माता की जय के नारे लगाये और जलूस में सम्मिलित हुआ।"

"फिर तुम्हारे गोली कैसे लगी ?"

"पुलिस वालों से पूछिये।"

मैजिस्ट्रेट बच्चे के उत्तर से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने फिर पूछा "क्या तुम छूटना चाहते हो ?"

लालसिंह ने मैजिस्ट्रेट के इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। मैजिस्ट्रेट ने फिर पूछा "यदि हम तुमको छोड़ दें तो तुम फिर तो जलूस में सम्मिलित न होगे ?"

इस बार बच्चे का स्वाभिमान जाग उठा। उसने उत्तर दिया "यदि जलूस निकाला गया तो मैं भी उसमें सम्मिलित होऊंगा।"

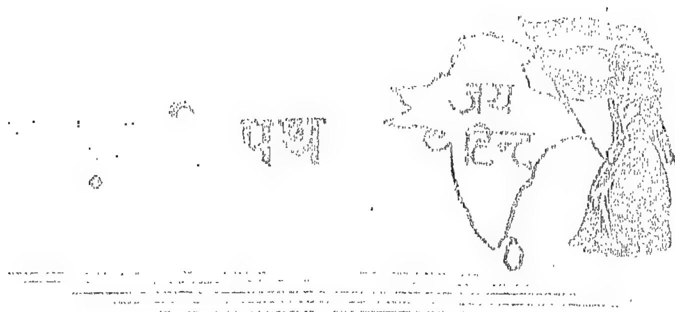
"तुम फिर पकड़े जाओगे।"

"कोई बात नहीं।"

मैजिस्ट्रेट ने जेलर को आज्ञा दी "लालसिंह को दफ्तर में बुलाया जाय और हमारे सामने उसके समस्त काग़ज़ रक्खे जांय।"

मैजिस्ट्रेट ने जेल का निरीक्षण किया और फिर कुछ कैदियों के मामलों पर विचार करने के लिये जेल के दफ्तर में चला गया। लालसिंह के काग़ज़ों को देखकर मैजिस्ट्रेट आश्चर्य में पड़ गया। पुलिस ने उसे ख़तरनाक लिखा था। मैजिस्ट्रेट को लालसिंह में ख़तरे का कोई भी चिन्ह न दिखाई दिया। पुलिस ने ज़मानत होने से इंकार करते समय भी उसे ख़तरनाक ही बताया था।

मैजिस्ट्रेट ने लालसिंह को मुक्त करते हुए कहा "तुम वीर हो। तुमने जो वीरता, साहस दिखाया उससे प्रसन्न होकर हम तुम्हें छोड़ते हैं। देखना ऐसे गोलीकाण्ड में फिर कभी सामने न आना।"



एक

"तुम्हें बेटे की मुहब्बत नहीं। तुम्हारा कलेजा पत्थर बना हुआ है। अभी उसकी आयु ही क्या है? तुम उसे जेल में बन्द कराके घर में चुप बैठ गये"। नाक भौं सिकोड़ते हुए सुरेश की मां ने अपने पति को ताड़ना दी।

पं० रामधन ने पत्नि को शान्त करते हुए कहा "क्या तुम्हारा ही बेटा जेल गया है, और भी तो बहुत से गये हुए हैं। देखती नहीं हो सुरेन्द्र अब दूसरी बार जेल गया है। देश सेवा में ही तो जेल गया है। कोई चोरी डकैती में तो गया नहीं है। इससे तो तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिये।"

राधा का क्रोध भड़क उठा। पति की बातें उसे सान्त्वना देने के स्थान में जलाने वाली सिद्ध हुईं। उसने क्रोध में भर कर कहा "फिर तुम जेल क्यों नहीं चले जाते। तुम्हें किसी ने रोका थोड़ा ही है। बेटे को भेजकर तुम्हारा कलेजा ठंडा होता होगा परन्तु मेरे तो कलेजे में आग जलती है।"

"राधा ! यदि मैं सरकारी नौकरी में न होता तो शायद जेल चला गया होता।"

राधा ने और अधिक क्रोध में भरकर कहा "आये बड़े जेल जाने वाले। ज़रा सा कष्ट तो उठाया नहीं जाता। जेल जायेंगे।"

"राधा ! जब अवसर पड़ता है तो सभी कष्ट सह लिया जाता है। यह कोई बड़ी बात नहीं।"

इसी बीच पं० रामधन को किसी व्यक्ति ने आवाज़ लगाई। पंडित जी बाहर आये। दो चपरासी कुछ सरकारी काग़ज़ लिये हुए थे। उन्होंने पूछा "कहो भाई ! क्या बात है ?"

"आपसे जुर्माना वसूल करना है।"

"कितना जुर्माना ?"

"पांच सौ रुपया।"

"यदि जुर्माना न दें तो ?"

"तो हम आपका सामान कुर्क करेंगे। पांच सौ रुपया तो हमें वसूल करना है।"

रामधन ने घर में अन्दर जाकर राधा को सूचना दी "सुरेश का जुर्माना देना है ?"

"कैसा जुर्माना ?"

"सरकार की तरफ़ से किया गया है।"

"कितना रुपया ?"

"पांच सौ।"

"पांच सौ रुपया। एक तो लड़का जेल गया। कहते थे साल भर जेल में रहेगा, अब कहते हो पांच सौ रुपया भी देना होगा ! यह

तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। यदि पांच सौ रुपया दे दिया तो लड़का छूट आयेगा या नहीं ?"

"जब जुर्माना और सज़ा दोनों हुई हैं तो सुरेश छूट कैसे आयेगा ?"

"यदि जुर्माना न दें तो ?"

"तो उसकी सज़ा छः मास और बढ़ जायेगी। अव्वल तो ये लोग सामान कुर्क करके जुर्माना वसूल कर ही लेंगे। अच्छा तो यह है कि तुम पांच सौ रुपया लाकर दे दो।"

राधा ने सन्दूक से पांच सौ रुपया निकाल कर अपने पति को दे दिया। क्रोधवश वह बराबर बड़बड़ाती रही। पंडित रामधन को रुपये पैसे से कोई विशेष काम न था। राधा ही रुपया पैसा रखती थी। उन्हें तो इतना ही काम था कि जब पत्नि ने कोई वस्तु मंगाई तो बाज़ार से ला दी। सरकारी वेतन के अतिरिक्त जो पांच सात रुपये कभी कभी प्राप्त हो जाते थे वे भी पंडित जी पत्नि को ही दे देते थे। पत्नि का उन पर बड़ा प्रभुत्व था। इसका कारण यह था कि राधा पंडित जी की दूसरी पत्नि थी। पहिली पत्नि की विवाह से दो वर्ष पश्चात् मृत्यु हो गई थी। यह सब कुछ होते हुए भी कोई ऐसी बात न थी कि राधा और पं० रामधन में अनबन रहती हो। केवल सुरेश के जेल चले जाने से राधा क्रोधित सी रहती थी।

दो

एक वर्ष पश्चात् सुरेश जेल से छूट आया उसने कालिज की पढ़ाई फिर प्रारम्भ कर दी। बी० ए० में पढ़ता था। यदि जेल न जाता तो इस वर्ष वह बी० ए० की परीक्षा दे लेता।

पं० रामधन की इच्छा थी सुरेश का विवाह कर देने की। परन्तु सुरेश चाहता था कि किसी कार्य में लग जाने पर विवाह करे। दूसरे उसे यह भी दिखाई दे रहा था कि कांग्रेस का संग्राम न जाने किस दिन छिड़ जाय। देश की स्थिति ऐसी ही बनी हुई थी।

राधा ने सुरेश की बैठक में प्रवेश किया। सुरेश अध्ययन में लगा हुआ था। उसकी मेज़ के पास राधा एक चौकी पर बैठ गई। उसने पुस्तक बन्द करदी और मां की ओर देखने लगा। राधा ने प्रेम पूर्ण शब्दों में पूछा "भैया अब तू मुझे बता दे विवाह कब करायेगा?"

"अभी नहीं।"

"फिर कब?"

"एक बार जेल और जाने के बाद।"

"तो क्या तूने जेल जाने का ठेका ले लिया है? अब जेल किस बात पर जायगा? क्या और लड़के जेल नहीं जा सकते?"

"मां! जेल तो वे ही लड़के जा सकते हैं जो कुछ राष्ट्रीय विचार रखते हों? जिनमें अपने देश के लिये कुछ कार्य करने की भावना हो। यदि सब जेल चले जांय तो फिर स्वराज्य ही न मिल जाय।"

पुत्र की बातों को सुनकर राधा को कोई ऐसी आशा न बंधी कि वह यह निश्चय कर सके कि सुरेश कब विवाह करा लेगा। पुत्र को वह अधिक कहना भी न चाहती थी क्योंकि समय ऐसा ही था। पड़ोस का एक लड़का ज़रा सी बात पर मां से नाराज़ होकर कहीं चला गया था। फिर भी प्रेम-वश राधा ने एक बार और कहा "सुरेश

ऐसी हठ ठीक नहीं। मुझसे घर का काम नहीं होता। बीस बरस का होगया और क्या बूढ़ा होकर विवाह करेगा ?"

इसी बीच पं० रामधन भी वहां आ पहुँचे। मां बेटे की बातों में वे कुछ भी हस्तक्षेप न करना चाहते थे। कमरे में पड़ी कुर्सी पर शांत रूप से बैठ गये। राधा ने उनको संबोधन करके कहा "क्यों जी! यह तुम्हारा लाडला कब विवाह करायेगा ? अभी तो जेल से आया था। तीन महीने ही तो हुए हैं इस पर भी कहता है—एक बार जेल और जाने के बाद विवाह कराऊंगा। क्या तमने भी अपने मन में यही सोच लिया है कि सुरेश से कुछ न कहो। यदि तुम दो चार बार भी इससे विवाह के लिये कहते तो अब तक इसका विवाह हो गया होता। परन्तु तुम तो लड़के के भले बुरे की कोई चिन्ता ही नहीं करते। देखो मैं कहे देती हूँ कि यदि सुरेश अब फिर जेल गया तो हम सब इसके साथ साथ जायेंगे।"

पं० रामधन पत्नि की बहादुरी पर हंस पड़े। उन्होंने व्यंग से कहा "तब तो तुम स्वराज्य प्राप्त कर ही लाओगी। अब की बार तुम जेल ज़रूर जाना।"

राधा की शान्ति का बांध टूट गया। कहां तो वह स्वयं जेल जाने की चर्चा कर बैठी थी और कहां अब पति की बात सुनकर क्रोधित हो उठी—"मेरा कौन काम रुका हुआ है जो मैं जेल जाऊं। जैसे दुनिया के और लोग पेट भरते हैं ऐसे ही मुझे भी रोटियां मिलती हैं।"

सुरेश ने भी मां के मन को टटोलते हुए कहा "मां! यदि तुम जेल चली जाओगी तो रोटियां और भी अच्छी मिलने लगेंगी। फिर

उन लोगों को भी मिलने लगेंगी जिनको अब नहीं मिलती हैं। हमारे बहुत से ऐसे भाई बहिन हैं जो आधे पेट सो जाते हैं, जिनके बच्चे एक एक बूंद दूध को तरसते हैं। स्वराज्य मिलने पर यह सब परिवर्तित हो जायेगा।"

राधा पुत्र के पास और ही आशा से आई थी। परन्तु यहां बात का प्रसंग ही बदल गया। वह झुंझलाती हुई कमरे से बाहर चली गई।

तीन

"चौराहे पर गोली चल गई" इस बात की चर्चा नगर में बिजली के समान फैल गई। दो दिन से नगर में हड़ताल थी। गलियों और मुहल्लों में भी छोटी से छोटी दुकान बन्द थी। मैजिस्ट्रेट ने धारा १४४ लगाकर जलूस निकालने व जलसे करने बन्द कर दिये थे फिर भी विद्यार्थी अपनी अपनी टुकड़ियों में जलूस निकालते थे। पुलिस उनको लाठी द्वारा भगाने का यत्न करती थी। दो दिन तक इसी प्रकार संघर्ष चलता रहा परन्तु तीसरे दिन पांच सात हज़ार व्यक्तियों का एक जलूस निकला जिस पर पुलिस ने गोली चला दी।

राधा सुरेश की प्रतीक्षा करते करते थक गई। पं० रामधन सायंकाल के ५ बजे घर पर आये। राधा ने उन्हें देखते ही पूछा "क्या आज नगर में गोली चल गई? सुरेश कहां है?"

"गोली चलने का समाचार तो मैंने भी सुना था परन्तु मैं तो सीधा दफ्तर से आ रहा हूँ। मुझे विस्तार में कुछ भी मालूम नहीं।"

"दफ्तर के काग़ज़ रखकर तुम पहिले लड़के की खबर लाओ।"

पं० रामधन सीधे चौराहे की तरफ़ चल दिये। ७ बजे से नगर में कफ्यु आर्डर लगा दिया गया था। इस कारण वे चाहते थे कि सुरेश का पता चलाकर शीघ्र घर वापिस आ जांय। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर पता चला कि चौराहे की ओर जाने वाला मार्ग रोक दिया गया है। दो विद्यार्थी गोली का शिकार बन गये और पचासों घायल पड़े हैं। पं० रामधन जहां तक आगे बढ़ सकते थे बढ़ते रहे। इसी बीच पुलिस ने भीड़ पर लाठी चार्ज कर दिया। ऐसी स्थिति में पं० रामधन पीछे हट गये। उन्हें यह भी डर था कि कोई अफ़सर उन्हें जन-समूह में देख न ले। कौन समझेगा कि वे अपने पुत्र को तलाश करने के लिये आये थे।

इसी बीच दो तीन खाली फौजी लारियां आ गईं। पुलिस और फौजी लोगों ने लाश और घायलों को उठाकर लारियों में डाल दिया और वे कोतवाली ले गये।

पं० रामधन घर वापिस आये। पत्नि को सारा समाचार बता दिया, उसे यह भी बताया कि कुछ घायल विद्यार्थी कोतवाली ले जाये गये हैं। राधा ने जिस समय यह समाचार सुना तो उसका हृदय धड़कने लगा। उसने अपने पति से कहा "अच्छा तुम मुझे कोतवाली ले चलो। मैं सुरेश का पता लगा लूंगी।"

पं० रामधन ने समझाया "मैं अभी कोतवाली जाता हूँ। तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं। सात बजे से कफ्यु आर्डर लगा हुआ है, छः से अधिक बज चुके हैं। तुम थोड़ा धैर्य रक्खो अभी पता चल जायगा। कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ता भी तो वहां पर पहुँच गये हैं वे सब पता लगा रहे हैं।

राधा को इतने पर भी सान्त्वना न मिली। पं० रामधन तुरन्त कोतवाली की ओर चल दिये। मार्ग में पता चला कि जिन विद्यार्थियों को साधारण चोट आई थीं वे सब जेल भेजे जा रहे हैं, और दो ऐसे विद्यार्थी हैं जिनको अधिक चोट आई हैं वे सिविल अस्पताल में पुलिस के पहरे में रक्खे जायेंगे। पंडित जी को यह कुछ भी ज्ञात न हो पाया कि सुरेश का क्या हुआ और वह कहां है। उन्हों ने सुरेश के एक साथी को कोतवाली की ओर से आते हुए देखा। उसे रोककर पूछा "जगदीश! क्या तुमने सुरेश को देखा था?"

"सुरेश पकड़ा गया। उसे कुछ चोट भी आई है और पुलिस चार विद्यार्थियों को अभी अभी लारी मे बिठाकर जेल ले गई है। उनमें सुरेश भी है।"

"क्या तुमने उसे देखा था?"

"मैंने देखा तो नहीं परन्तु कई दूसरे साथियों से सुना था।"

पं० रामधन संशय में पड़ गये। ठीक निश्चय करने के लिये वे कोतवाली की ओर बढ़े। कोतवाली के दरवाजे के पास पहुँचने पर भी उन्हें ठीक पता न चला। अन्दर जाने का प्रयत्न किया परन्तु पुलिस ने इनको अन्दर न जाने दिया। अन्दर से दो तीन व्यक्ति बाहर आये। पं० रामधन ने उनसे पूछा "क्या आप बतायेंगे कि गोली से कौन २ मरे और जेल किन २ को भेजा गया?"

इनमें से एक व्यक्ति ने पूरी सूची सुना दी। पं० रामधन को विश्वास हो गया कि सुरेश जेल भेजा गया है और उसको साधारण चोट आई है। पं० रामधन घर को वापिस चल दिये। सात बजने

वाले थे। कर्फ्यु आर्डर का उन्हें भय लगा हुआ था।

राधा अपने पति के लौटने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी थी। अकेले पति को घर की ओर लौटते हुए देखकर पूछा "क्या सुरेश का पता नहीं चला?"

वह तो जेल भेज दिया गया।"

"फिर अब क्या होगा?"

"कल पता चलेगा।"

चार

११ सितम्बर को सायंकाल महिलाओं का एक विराट जलूस निकला। हज़ारों महिलाओं ने उसमें भाग लिया। ज़िला अधिकारी इस दृश्य को देखकर बौखला गये। उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करके जलूस निकल जाना उनके लिये अपमान जनक था। पुलिस और सिटी मैजिस्ट्रेट ने जलूस को तितर बितर करने का यत्न किया।

महिलाओं में जोश उत्पन्न हो गया। उनमें अपने देश पर मर मिटने की भावना जागृत हो उठी। सिटी मैजिस्ट्रेट के बार बार रोकने पर भी वे आगे बढ़ती ही गईं।

सिटी मैजिस्ट्रेट ने स्थिति को क़ाबू से बाहर समझते हुए पुलिस को आज्ञा दी इन्हें गिरफ्तार कर लिया जाय।

पुलिस की लारियां चारों ओर से आ गईं और जितनी भी महिलायें वे पकड़ सकते थे, उन्हें लारियों में बिठाकर जेल भेज दिया गया। शकुन्तला का दो वर्ष का बच्चा घर पर ही रह गया। विमला की ७ मास की लड़की मां के लिये घर पर ही तड़पती रह गई। कुछ

माताओं की गोद में बच्चे भी थे, वे उनके साथ जेल चले गये। रात्रि की इस धड़पकड़ में इन देवियों के लिये ओढ़ने बिछाने का सामान भी जेल पर न पहुँच सका।

जेल में जाने वाली महिलाओं में कुछ वृद्ध थीं और कुछ युवती। कुछ चौदह पन्द्रह वर्ष की लड़कियां थीं और कुछ प्रौढ़। इनमें से कुछ ऐसी थीं जो किसी के हाथ का भोजन तो दूर पानी पीना भी पसन्द न करती थीं। कुछ ऐसी थीं जो पूजा पाठ के उपरान्त भोजन करती थीं और कुछ ऐसी थीं जो घर पर पलंग पर पड़ी हुई सोकर उठते समय चाय की दो तीन प्यालियां पीती थीं।

यह तो उनके घर की बात रहीं परन्तु अब तो वे जेल में बन्द थीं। जिन देवियों ने जेल की रोटी न खाई उनको भुने चने दिये गये। पूजा पाठ के लिये केवल धारणा मात्र से काम चला लेने की प्रेरणा की गई। विवशता में ऐसा करना ही पड़ता है।

जेलर को कई बार कहा गया "जो बहिनें जेल की रोटी खाना पसन्द नहीं करती हैं उन्हें सामान दे दिया जाय, वे स्वयं अपना भोजन बना लेंगी।"

परन्तु जेलर अपने जेल नियमों की दुहाई देता रहा। नियमों के विरुद्ध वह कुछ भी करने को तैयार न हुआ। फिर भी ऐसी देवियों के लिये कुछ फल आदि की व्यवस्था की गई।

पांच

सुरेश के विरुद्ध धारा १४४ तोड़ने और पुलिस पर पत्थर फेंकने का मुक़द्मा चल रहा था। दो बार मुकदमा सरकारी सबूत के

गवाह न आने से स्थगित हो चुका था। तीसरी बार मुकदमे की पेशी पर सुरेश को पता चला कि उसकी माता राधा भी जेल में बन्द है।

वह कल्पना भी न कर सकता था कि राधा जेल जा सकेगी। परन्तु स्त्रियों के समूह में राधा भी सम्मिलित थी और सभी के साथ वह भी पकड़ी गई।

सुरेश इस समाचार को सुनकर फूला न समाया। दो मास के पश्चात् जब राधा को जेल से छोड़ा गया तो उसने अपने पुत्र सुरेश से मिलना चाहा। सुरेश को जेल बारक से बुलवाया गया। सुरेश ने मां को वन्दे मातरम् करते हुए कहा "मां! तुम तो मुझे जेल आने से रोकती थीं और कहां अब तुम जेल में हो।"

आशीर्वाद देकर राधा जेल से बाहर हो गई।

विद्रोह की आग

१

"तुम्हारा मार्ग मुझे स्वीकार नहीं। चींटी की चाल से हिमालय की विशाल चोटी पर पहुँचने के लिये बहुत समय चाहिये। बीस वर्ष की मन्द गति से भारतीय निराश हो चुके हैं। अहिंसा की रट लगाये रहने से काम नहीं बन सकता। महात्मा जी का मार्ग हमें ग्राह्य नहीं। इन नर पिशाच लुटेरों से अहिंसा के बल पर अपना राज वापिस ले लेना सम्भव नहीं।"

"उमा! फिर तुम क्या चाहती हो? तुम चाहती हो अंग्रेज़ों की तोप और गोलों से अबोध जनता का विनाश। स्वतन्त्रता के संघर्ष में क्या तुम एक बारगी ज्वारभाटा लाना चाहती हो या लहरों को उठाकर अपने ध्येय की ओर बढ़ना चाहती हो? तुम चाहती हो रक्त-रंजित भूमि पर आगे बढ़ना? परन्तु ऐसा करने में अभी हमें सफलता न मिलेगी। मेरा मार्ग दूसरा है, मैं अहिंसा के बल पर उभर कर आगे बढ़ना चाहता हूँ। समुद्र में स्वयं गति होगी।" इतना कहकर विमल उमा के मुख की ओर देखने लगा।

उमा ने उत्तर देते हुए कहा "तो फिर मुझे आपका साथ छोड़ देना होगा।"

"यदि तुम्हारे विचार हम लोगों से नहीं मिलते हैं तो फिर विवशता है। परन्तु उमा! तुम अपनी शक्ति का दुरुपयोग करोगी यदि तुम विध्वंसक कार्यों में पड़ गईं।"

"विमल! क़दम क़दम पर अहिंसा का आधार लेकर कार्य करना मेरे लिये असम्भव है। क्रान्ति का भयंकर तूफ़ान सर्वत्र उठा हुआ है। इस तूफ़ान में अपने आपको खो देने से काम न चलेगा। अहिंसा का मार्ग इस समय प्रचण्ड तूफ़ान में फंस रहा है और हम उस तूफ़ान से निकलना चाहते हैं। आपके विचारों का मुझे समर्थन नहीं करना है। आपके विचारों से मुझे शक्ति नहीं मिलती। आपके साथ दो वर्ष तक कार्य करते हुए भी मैंने अपने देश को आगे बढ़ा नहीं पाया।"

"तो इसका यह अर्थ है कि तुम सदा के लिए हम लोगों से सम्बन्ध विच्छेद कर रही हो और क्या तुम व्यक्तिगत रूप से भी मुझे छोड़ देना चाहती हो? तुम में इतना भारी परिवर्तन आज कैसे हो गया? आज तुम्हारा दृष्टिकोण इतना किस प्रकार बदल गया?"

"विमल! तुम न तो गुप्त समिति के कार्य से सहमत हो, न तुम उग्रवादियों के कार्यक्रम पर चलने को तैयार हो और न तुम विध्वंसक कार्यक्रम में भाग लेना चाहते हो, फिर तुम चाहते क्या हो? केवल अहिंसा की रट लगाये रखना? मैं तुम्हारे मार्ग पर चलकर कोई उज्ज्वल रेखा की झलक नहीं देख पाती। व्यक्तिगत सम्बन्ध को मैं विचारों के साथ सम्मिलित करना चाहती हूँ।"

"उमा तुम उच्छृङ्खलता की ओर बढ़ रही हो।"

"नहीं।"

"उमा! तुम्हारी समस्त बातें किसी भी निश्चित आधार पर अवलम्बित नहीं। तुम्हारी धारणा आज ही स्वराज्य ले लेने की बन कैसे गई? तुम गुप्त समिति में सम्मिलित होकर अपने देश का भला करोगी— इसमें मुझे सन्देह है। तुम उन बातों को भारत की जनता पर थोपना चाहती हो जो अभी क्रिया में आनी असम्भव हैं। तुम क्रान्ति चाहती हो और मैं भी क्रान्ति चाहता हूँ। परन्तु......"

"परन्तु विमल! तुम पुराने विचार के पोषक बनकर क्रान्ति चाहते हो और मैं आधुनिक क्रान्ति चाहती हूँ। मैं रूस के समान क्रान्ति चाहती हूँ। मैं जापान के समान देश को उभार देना और आयरलैंड के समान अपने देश को स्वतन्त्र कर देना चाहती हूँ। मेरा मार्ग और है—तुम्हारा और।"

"उमा! तुम अपने मार्ग का अनुसरण करो" इतना कहकर विमल उदास हो गया। उमा चुपचाप कमरे से चली गई। विमल को उमा की बातों ने व्याकुल बना दिया। उमा का प्रेम उसे पागल बनाने लगा।

२

संसार का महासमर जनता को कम्पायमान कर रहा था। रूस की सहायता का प्रश्न उपस्थित था। उसके फौलादी कारखानों का विनाश हो रहा था। जर्मनी ने अपनी पूरी शक्ति रूस जैसे विशाल देश को विजय कर लेने में लगाई हुई थी। संसार के छोटे और बड़े

सभी राष्ट्रों पर प्रलय के बादल घिरे हुए थे। सभी का अस्तित्व खतरे में था। ब्रिटेन ने भारत को युद्ध में झोंक दिया था। भारतीय नौजवान बराबर युद्ध मोर्चों पर भेजे जा रहे थे। दो तीन मास की साधारण शिक्षा से ही गांव का जवान, फौजी सैनिक बन जाता था। सामग्री की लूट का तो कोई ठिकाना ही न था। रात दिन मोटर ट्रकें सामान लाद लाद कर फौजी गोदामों में पहुँचा रहे थे। भारत परतन्त्र था—गुलाम था। भारत विवश था और असमंजस में पड़ा था। उसे कुछ न सूझता था कि किस प्रकार वह अपने आपको नर संहार, अन्न, वस्त्र और खाद्य सामग्री की लूट से बचावे।

इस स्थिति में भी भारतीय नेताओं ने अपने देश की रक्षा के लिये उपाय सोचा। जनता की रक्षा के लिये यत्न किया। उन्होंने युद्ध से भारत को अलग रहने की घोषणा की। स्वतन्त्र देश के समान अपने देश के बारे में निर्णय करने का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु सत्ता के मद में चूर्ण नौकरशाही ने उनकी बात को ठुकरा दिया। संग्राम छेड़ने की घोषणा की गई। जहां रात दिन आकाश तोप के गोलों की गर्जन से गूंज रहा हो, वहां अहिंसा वादियों का युद्ध छेड़ना क्या अर्थ रखता था, इस बात की परख होनी थी।

उमा ने देखा चौराहे पर राष्ट्रीय पताका लिये कुछ छात्रायें खड़ी हैं। सामने का सारा मार्ग पुलिस के सिपाहियों ने रोका हुआ है। छोटी छोटी बच्चियां 'भारत माता की जय' 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' के नारे लगा रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उमा आश्चर्य में पड़ गई। कुछ ही देर में उधर कुछ युवकों के दल तिरंगे झण्डे लिये आ पहुँचे। पुलिस को उन्हें रोकना कठिन हो गया। पुलिस के पास केवल

एक ही उपाय था कि वह उन्हें लाठी या गोली चलाकर भगादे। उसने ऐसा ही किया। लाठी वर्षा से कितने ही युवकों को सख्त चोट आई इनमें एक दो लड़कियां भी थीं। कुछ ही देर में भीड़ अपने अपने स्थान को चली गई। घायल व्यक्तियों को अस्पताल पहुँचाया गया।

उमा ने क्रान्ति की इस झलक को देखकर निश्चय किया कि एक बार विमल से फिर वार्तालाप किया जाय। विचारों में मत-भेद होते हुये भी उसके हृदय में विमल के प्रति प्रेम विद्यमान था।

उमा सीधी विमल के घर पहुँची। मकान बंद मिला। अन्दर से द्वार बंद था। उसने द्वार खटखटाया। भयभीत हुई विमल की माता द्वार पर आई उसने द्वार खोलने से पूर्व नाम पूछा। उमा के नाम बताने पर द्वार खोल दिया गया। विमल की माता ने कहा "तुम ऐसे खतरे के समय कहां कहां भागी फिरती हो? देखती नहीं कि गोली चल रही है?"

"गोली चल चुकी। अब कोई खतरा नहीं। विमल कहां है?"

उसका पता नहीं। अभी कुछ देर पहिले उसके पिताजी के पास एक व्यक्ति आया था। उसने कहा था कि विमल के गोली लगी है। परन्तु एक घंटा हो गया अभी तक कुछ पता नहीं। हम सब उसके लिये चिन्तित हैं। कुछ तुम्हें भी पता है?"

उमा ने उत्तर दिया 'चिन्ता न करो। गोली जरूर चली है। कुछ नौजवान घायल भी हुये हैं। मैं अभी अस्पताल जाकर पता लगाती हूँ।"

उमा अस्पताल पहुँची। अस्पताल का कमरा घायलों से भरा हुआ था। प्रत्येक रोगी को देख चुकने पर भी उमा को विमल का कोई

पता न चला। वह घबड़ा गई। उसने मृतकों के बारे में भी पूछताछ की परन्तु उनमें भी विमल का नाम न था। उमा निराश होकर अस्पताल से वापिस विमल के घर लौट गई। विमल के पिता भी लौट आये थे। सभी विमल के लिये गम्भीर चिन्ता में पड़ रहे थे।

३

दो सप्ताह के पश्चात् नगर में कुछ शान्ति प्रतीत हुई परन्तु भयभीत जनता अपने विचारों को दबाये हुये थी। उमा की पार्टी को कोई उपाय न सूझता था कि वह ऐसे आड़े समय में क्या करे।

एक व्यक्ति ने उमा को एक छोटा सा परचा दिया। उसने पत्र लेते हुये उस ग्रामीण भोले भाले व्यक्ति को सिर से पैर तक देखा। उमा ने पूछा "परचा कहां से लाये हो?"

"मुझे कोई बात बताने की आज्ञा नहीं। परचा पढ़कर उत्तर लिख दीजिये मैं तो केवल हरकारा मात्र हूँ।"

पत्र में लिखा था—

गुप्त स्थान
२ सितम्बर १९४२

प्यारी उमा!

विद्रोह की आग आज सारे देश में फैल रही है। मैं भी अपने मार्ग पर चला जा रहा हूँ। इस अग्नि परीक्षा के समय तुम और तुम्हारी पार्टी क्या कर रही है? अच्छा! घर पर मेरी कुशलता का समाचार अवश्य देना। माता जी को सान्त्वना देना। अभी मेरे बारे में अधिक जानने का यत्न न करना।

तुम्हारा चिरपरिचित—
विमल

उमा आश्चर्य में पड़ गई। हरकारे को शीघ्र वापिस जाना था। पुलिस के कर्मचारी उमा की कड़ी निगरानी कर रहे थे। विमल के साथ रहने के कारण उसे भी बागी समझा जाता था। उसने उत्तर लिखा:—

विमल !

कुशलता का समाचार पाकर सान्त्वना मिली। देश में महान संग्राम छिड़ा हुआ है। तुम्हें बधाई है कि तुम दृढ़ता से अपना कर्तव्य पालन कर रहे हो। क्या एक बार मुझे भी दर्शन दे सकोगे ?

तुम्हारी—

उमा

हरकारा पत्र लेकर वापिस चला गया। उमा सोचने लगी कि जो व्यक्ति पत्र लेकर आया था वह कोई ग्रामीण व्यक्ति न था। उसके वार्तालाप से तो ऐसा प्रगट होता था कि वह कोई शिक्षित व्यक्ति है। विमल का समाचार पाकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने विमल के घर जाकर कुशल समाचार दिया। विमल की माता पुत्र का कुशल समाचार पाकर हर्षित हो उठी।

४

प्रान्तीय सरकार ने विमल को फ़रार घोषित कर दिया ! स्कूल और कालिज विद्यार्थियों में उत्तेजना फैलाने वाला वही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने सरकार को परेशानी में डाला हुआ था। थानेदार के क़त्ल का भी विमल से सम्बन्ध जोड़ा जा रहा था।

फ़रार रहने की दशा में विमल को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी कभी तो उसे सुनसान मार्ग को पार करने में अपने

जीवन को जोखों में डालना पड़ा। परन्तु वह वीरता के साथ उन आपत्तियों को सहन करता रहा।

उमा विमल के लिये चिन्तित रहने लगी। उमा ने कालिज जाना छोड़ दिया। छोटे २ बच्चों पर पुलिस की लाठियों का पड़ना, माताओं और बहिनों का अपमान, नवयुवकों को गोली मार देना ऐसी घटनायें थीं जिसने उमा को विह्वल कर दिया। उमा को विमल का अब तक केवल एक पत्र प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् उसे कोई समाचार न मिल सका।

रात्रि के ८ बजे थे। उमा समाचार पत्र पढ़ रही थी। देश की बदलती स्थिति पर महात्मा गांधी जी के विचार विशेष रूप से राजनीति का विषय बने हुये थे। विमल गुप्त रूप से उमा के पास आ पहुँचा। उसने मुसकराते हुये पूछा "उमा ! पहचानती हो ?"

उमा ने समाचार पत्र मेज पर डालते हुये विमल की ओर देखा। उसके सिर के बाल कुछ बढ़े हुये थे। वह पहिले से कुछ दुबला प्रतीत होता था। रंग भी कुछ बदला हुआ था। वह नंगे सिर था और बंद गले का कुर्ता पहिने था। उमा ने विमल को तुरन्त पहिचान लिया और हंसकर उत्तर दिया "न पहिचानने की कौन सी बात है ? साधारण से बदले हो।"

दोनों व्यक्ति काफी देर तक वार्तालाप करते रहे। विमल उमा के पास अधिक देर तक ठहरना उचित न समझता था। उमा पर पुलिस कड़ी दृष्टि रखती थी। व्यर्थ गिरफ्तार हो जाना वह उचित न समझता था। पुलिस की दृष्टि में वह फरार क्रान्तिकारी था।

विमल ने मुसकराते हुये पूछा "उमा ! अब तुम कौन दल में काम कर रही हो ? अब तो तुम क्रान्तिकारी नेता बन गई होगी ?"

' नहीं ?"

"फिर ?"

' विमल ! अब मेरा किसी भी दल से कोई सम्बन्ध नहीं। कांग्रेस के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई ऐसी संस्था नहीं दिखाई पड़ रही जो भारत को गुलामी से निकाल सके।"

कुछ देर वार्तालाप करने के पश्चात् "अच्छा फिर मिलेंगे" कहकर विमल चुपचाप चला गया।

५

भारत के प्राण महात्मा गांधी जी की घोषणा हो जाने पर फरार विमल पुलिस कोतवाली में उपस्थित हो गया। सारे नगर में समाचार फैल गया कि विमल पकड़ा गया। उमा इस समाचार को पाकर कोतवाली पहुँची। उसने विमल को देखकर कहा "आखिर पकड़े गये ?"

"नहीं ! पकड़ा नहीं गया। मैं तो स्वयं उपस्थित हुआ हूँ।"

"विमल ! मैंने देख लिया कि तुम लोगों ने विद्रोह की वह आग प्रज्ज्वलित की है जो कभी बुझाये से न बुझेगी। अब वह दिन दूर नहीं जब हम स्वतंत्र होंगे और विश्व के राष्ट्रों में स्वतन्त्र राष्ट्र गिने [illegible]